भास्कराभासनिवारण

रचयिता

ला० भवानीप्रसाद

नम्बरदार

ब्रह्मप्रेस इटावा में छपा ।

श्री हरिः

भास्कराभास निवारण

अर्थात्

पं० तुलसीराम रचित भास्करप्र
काशका युक्तियुक्त खण्डन

रचयिता

लाला भवानीप्रसाद नम्बरदार देवरी कलां
जिला सागर

Printed by B. D. S. at the Brahm Press
Etawah.

द्वितीयवार १००० } सन् १९१४ ई० { मूल्य ।=)

प्रकाशक का निवेदन

यह पुस्तक ग्रन्थकार ने सन् १९०१ में लिखकर प्रकाशित की थी जिसको आज १२ वर्ष से कुछ ऊपर समय हुआ, यद्यपि इसमें पूरे भास्कर प्रकाश का खण्डन नहीं है तथापि इसमें जितना कुछ लिखा गया है उस से भास्कर प्रकाश की निःसारता के जानने में पाठकों को वहुत बड़ी मदद मिल सकेगी हमारा विचार भास्करप्रकाश के खण्डन में एक पूरी पुस्तक शीघ्र प्रकाशित करनेका है तब तक पाठकों को इसी पुस्तकसे सन्तोष करना चाहिये। इसके देखनेसे पाठकों को वहुतसी नई बातें मालूम पड़ेंगी साथ ही आर्यसमाजी सज्जनों को यह कहने का अवसर न मिलेगा कि भास्करप्रकाश का खण्डन अबतक नहीं छपा, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गर्ग वकील जौहरी बाजार आगराकी अनुमति तथा आग्रह इस पुस्तकके प्रकाशित होने में अन्यतम कारण है।

प्रकाशक

—:0:—

भूमिका

—:o:—

प्रिय पाठकगण ! आप महाशयों को अच्छी प्रकार विदित है कि जगद्विख्यात विद्वद्वर मुरादाबाद निवासी श्रीमान् पंडित ज्वालाप्रसाद जी ने किस परिश्रम से द० नं० ति० भा० की रचना करके दयानन्दीय पोल को खोल दिखलाया है- और कैसे २ वेद इत्यादि के प्रमाणों से सनातनधर्मकी प्राचीन मर्यादा सिद्ध करके उसकी रक्षा की है कि जिस द० नं० ति० भा० के पढ़ने से मनुष्यके जी में एक भी शंका शेष नहीं रहती परन्तु फिर भी गुसाईं तुलसीदास जी का यह लेख से (देख न सकहिं पराइ विभूती) कब असत्य होसक्ता है देखिये द० न० ति० भा० का निर्माण होना व इसपर लोगोंका अत्यन्त प्रेम बढ़ना व इसके द्वारा सनातनधर्म की रक्षा होना यह हमारे स्वामी तुलसीराम जी को मनसा, वाचा कर्मणा करके असह्य होगया और आपने इसके खण्डन व स० प्र० के मण्डन में शीघ्र ही एक ग्रन्थ भास्करप्रकाश नामी बनाकर छाप ही तो दिया इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि हमारे स्वामी तुलसीराम जी ने इस भा० प्र० की रचना करके द० नं० ति० भास्कर के खंडन में बड़ाही भारी परिश्रम उठाया है परन्तु उसके देखने से स्पष्ट ही विदित होता है कि उक्त स्वामी जी ने जो कुछ परिश्रम किया है वह केवल द० नं० ति० भा० के दिये हुए प्रमाणों के अर्थ बदलने में ही किया है न कि कोई नये प्रमाणों से द० नं० ति० भा० का खंडन व स० प्र० का मंडन किया हो—(कदाचित् वे इसीको खंडन कहते हों) मैंने जहां तक इस भा० प्र० का का अवलोकन किया है उससे मेरे चित्त का कोई समाधान न होकर

और २ शंकाएं उत्पन्न होती हैं जैसा कि स० प्र० व भा० प्र० का मुख्य सिद्धांत है कि ईश्वर निराकार है, और वह कभी अवतार नहीं लेता परन्तु फिर भा० प्र० पृ० २५७ स्वामी तुलसीरामजी एक श्लोक का यह अर्थ करते हैं कि अपने शीघ्र होने वाले उपादान कारण तत्वसे विविध प्रजाओंकी रचना चाहनेवाले उस परमात्मा ने (अप्) को ही प्रथम रचा और उस [अप] में बीज बोया वह सूर्यके समान चमकीला हो तेजोमय गोला होगया और उस ब्रह्मांड नामक गोले में सब लोक का पितामह प्रकृति सहित परमात्मा प्रकट हुआ—अब देखिये कि निराकार परमात्मा ने जो बीज बोया वह क्या वस्तु थी ? और फिर प्रकृति सहित परमात्मा का प्रकट होना क्या ? अब भी यही कहता है कि ईश्वर निराकार है इस पर भी मैं नहीं कह सकता कि यह मेरी समझ का दोष है या भा० प्र० का—खैर जो हो अब जो २ प्रश्न मेरी आत्मा में उपस्थित हुए हैं उनको मैं श्री पंडित लक्ष्मीदत्त जीकी सहायता व अपने मित्रगण पण्डित गोविन्द राव सा० व पंडित लक्ष्मणराव सा० आनरेरी ब्रेंच मजिस्ट्रेट व पंडित सीताराम साहिब प्राचीन रईस व पंडित परमानन्द सा० अध्यापक व बाबू नन्दकिशोर जी म्यूनीसिपल क्लार्क व मुन्शी छोटेलाल जी व मौजीलाल सा० नम्बरदार देवरी जिला सागर की सम्मति से एकत्र कर इस भास्कराभास निवारण ग्रन्थकी रचना प्रारम्भ करता हूं और फिर यह ग्रन्थ श्रीमान् जगद्विख्यात् सनातनधर्म रक्षक पंडित ज्वालाप्रसादजी को समर्पण करता हूं इसके अतिरिक्त पाठकों से भी मेरा यही निवेदन है कि यदि मेरे प्रश्नों में कहीं कोई भूल उन के दृष्टिगोचर हो तो वे कृपापूर्वक उसको अपने गौरव की तरफ देख कर क्षमा करेंगे व मेरा समाधान करदेंगे आगे उनकी मरजी है।

आपका कृतज्ञ—लाला भवानीप्रसाद

देवरी जिला सागर

॥ श्री गणेशायनमः ॥

मङ्गलाचरण ।

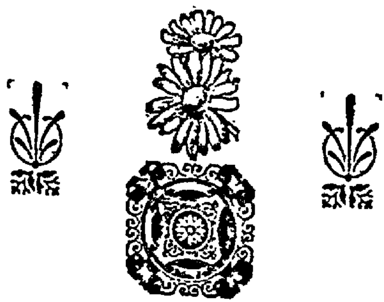
दोहा–श्री गणेश पद पद्म युग बन्दौं दुहुं कर जोर।
कृपा सहित प्रभु कीजिये पूर मनोरथ मोर ॥

मनहर—वाम अङ्ग सङ्ग सोहै जनक दुलारी पीत, अंबर झलक तन अंग द्युतिकारी है। मोतिन चमक चहुं ओर सो सम्हारी क्रीट, कुण्डल कपोलन पै, "लाल" बलिहारी है॥ निंदक कुपन्थी खल मण्डल विखंडवेको लखनसमेत शर चाप कर धारी है। अवधबिहारी यह विनय हमारी सत्य धर्म रखवारी की तिहारी अब बारी है॥

तथा—जैसे राहु चन्द्र पर चन्द अरविन्द पर कदलीके वृन्द पर हिमकी लहर है। अंकुश मतंग पर चावुक तुरंग पर केहरी कुरङ्ग पर जीव पै जहर है॥ अहि पै खगेश अरु मैन पै महेश जैसे तिमिर बिनाश में दिनेश को कहर है। "लालजू" सुकवि तैसे ज्वालामुख ज्वाल आगे तुलसी विचार कहो! कैसे के ठहर है॥

छन्द–जबलों वसुधाअहै शेषशीपअरु, गंग तुरंग सुहाई रहै।
जबलों बर अम्बर में सुखमा, शशि आदितकी दरसाईरहै॥
जबलों हरिकी महिमा कवि लालजू, वेद पुरानन गाईरहै।
सतधर्म सनातन धारियोंकी, तबलों जग कीरति छाई रहै।

तथा–गौरिमहेश रहैंअनकूल जो राखतहैं निज भक्तनके पनि।
पातकपुंजबिनाशकरैं, जिनवासुकिनायकेनृत्यकियोफनि॥
चन्द रवी बुध भौम गुरु, भृगु केतरु राहुनकोप करैं शनि।
धर्म सनातन धारियों पै कविलाल करैं किरपा इतने धनि॥



श्रीगणेशायनमः ॥

भास्कराभास निवारण

दयानन्द ति० भा०—पृ० २ पं० १७ जब कि स० प्र० बनाते समय स्वामीजीको शुद्ध हिन्दी बोलना नहीं आता था तबइस के पूर्वके बनाएहुए वेद भाष्य भूमिका इत्यादि ग्रन्थ अवश्य अशुद्ध होंगे—इसका उत्तर लिखने में भास्करप्रकाश पृ०७४पं०६में लिखा है कि बहुत लोगोंने देखा है (जो अबतक वर्तमान हैं) कि स्वामीजी महाराज आर्यसमाजोंके स्थापन करनेके पूर्व गंगा तटपर दिगम्बर हो विचरा करते थे इत्यादि—

इस पर हमारा प्रश्न ।

प्रश्न १—गंगा तटपर क्यों विचरते थे ? क्या गंगाजी को पहिले स० प्र० के लेखानुसार पाप नाशक तीर्थ समझते थे ? और यदि ऐसा नहीं है तो फिर गंगा तटपर विचरने का कारण ही क्या है ।

प्रश्न २—जबकि आर्य्यसमाज स्थापन के पूर्व स्वामीजी दिगम्बर रहते थे तो बतलाइये कि यह वस्त्र इत्यादि कबसे धारण किये ? अब यदि आप कहैं कि आर्यसमाज स्थापन करने या स० प्र० बनाने के पश्चात् स्वामीजी ने वस्त्र धारण किया (जैसाकि आपके लेखसे भी निकलता है) तो हम पूछते हैं कि जिन आर्य समाजों ने व स० प्र० ने ऐसा महात्मा का असली धर्म छुड़ाकर भ्रष्ट कर दिया—वह दूसरोंको कब सुमार्ग पर लासक्ते हैं ? और फिर क्यों इस पुस्तक का नाम सत्यार्थप्रकाश समझा जावे ?

द० नं० ति० भा०—में पंडितजी ने (स ब्रह्मा) इसका अर्थ किया है कि वह ब्रह्मारूप होकर जगत्को उत्पन्न करता है—इस पर भा० प्र० पृ० ५ पं० १६ से लिखा है (सब्रह्मा) इसका अक्षरार्थ यह है कि वह ब्रह्मा है—बतलाइये इससे यह कहां निकलता है कि वह ब्रह्मारूप होकर जगतको उत्पन्न करता है।

इस पर हमारा प्रश्न।

प्रश्न–१ हमारे विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसादजी का अर्थ अशुद्ध व आपका बहुत शुद्ध सही–पर यह तो बतलाइये कि इसी भा० प्र० पृ० १८१ में (द्वे वाव ब्रह्मणोरूपे मूर्तंचामूर्तं चेति) आपने इसका अर्थ किया है कि ब्रह्मके २ रूप हैं इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्म स्वतः दो प्रकार का है किन्तु यह तात्पर्य है कि मूर्त्ति अमूर्त्ति दो प्रकार के पदार्थोंका स्वामी ब्रह्म है यदि यह कहा जावे कि देवदत्तकी २ गऊ हैं एक लाल एक काली तो इससे क्याकोई समझ सकता है ? कि देवदत्त स्वयं काली व लाल गऊ के आकार का है ? कदापि नहीं अब आपही कहिये इतना लम्बा चौड़ा अर्थ आपने किन किन अक्षरों से निकाला है वाह क्या यहां वुही मसल सत्य है कि काना अपनी टेंट न देख कर दूसरे की फुल्ली पर ध्यान देता है—

भा० प्र० पृ० ५ में (द० न० ति० भा० के इस प्रश्नका कि जब तुम ब्रह्माको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो तब बतलाओ कि उनके माता पिता कौन थे ? व उनका नाम क्या था) उत्तर लिखते हैं कि बिना माताके पुत्र नहीं होता—यह नियम सृष्टि के पश्चात्काही है किन्तु सृष्टिके आरम्भमें परमात्माही सृष्टिकेपिता होते हैं –फिर द० न० ति० भा० मेंजो पण्डितजीने मनु प्र॰

ध्याय १ श्लो० ३७ से स० प्र० के विरुद्ध मूल योनि सिद्धकी है उसके उत्तर में भा० प्र० पृ० १५ पं० १ से लेख है कि कृपा कर इसके पूर्वके ४ श्लोक और सुन लीजिये तब आपको विदित हो जायगा कि यह श्लोक और इसका अर्थ यह हुआ और ३३ ३४-३५-३६-३७ वां श्लो० लिखकर आप अर्थ करते हैं कि उस विराट् पुरुषने स्वयं तप करके जिसे उत्पन्न किया वह स्वायंभुव मनु हैं जब स्वायंभुव मनु ने सुदुस्तर तप करके प्रजा रचनी चाही तब आदि में दश महर्षि मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, नारद को रचा इन्हीं ने अन्य सात बड़े तेजस्वी मनुओं को देवताओं और देवस्थानों को, तेजस्वी महर्षियों को यक्ष राक्षस और पिशाचादिकों कोभी रचा।

प्रश्न १—आप कहते हैं कि उस विराट् पुरुषने स्वयं तप करके जिसे उत्पन्न किया वह स्वायंभुव मनु है तो बतलाइये कि उस विराट् पुरुष ने किसका तप किया ? क्या उसके ऊपर और भी कोई उसका बनानेवाला था जिसका तप किया और यह तप साकार होकर किया या निराकार ही में किया तो किस प्रकार से ?

प्रश्न २—आप कहते हैं कि सृष्टिके आदि में परमेश्वर ही सबके पिता होते हैं और इसी के अनुसार विराट् पुरुष ने आदि में स्वायभुव मनु को ही उत्पन्न किया है व उन्होंने १० महर्षियों को, तो अब आदि के स्वायंभुवमनुको छोड़कर उनके उत्पन्न किये हुए ही १० महर्षियों की माताका नाम बतलाइये क्योंकि वह आदि नहीं किन्तु दूसरी पीढ़ी है।

प्रश्न ३—आपकी बतलाई वंशावली से तीन पीढ़ी तक ब्रह्माका नाम नहीं आया है तो अब आपतो पंडित हैं फिर

दयानन्द ति० भा० का ठीक उत्तर देके ब्रह्माकी मा का नाम क्यों नहीं बतलाते ?

प्रश्न ४—आपके लेखानुसार विराट् पुरुष ने आदि में स्वायम्भुव मनु को उत्पन्न किया है पर यह भी तो कहिये उनको कहां से व कैसे उत्पन्न किया है।

प्रश्न ५—यदि आप ब्रह्मा की माका नाम नहीं बतला सकते तो फिर क्या आपके लेखानुसार ही यह कहना अ-योग्य होगा कि निस्सन्देह ब्रह्मा सृष्टिके आदि में हुये हैं।

प्रश्न ६—आप कहते हैं कि १० महर्षियों ने अन्य ७ म-नुओं को व देवता और देव स्थानों को रचा तो अब कहिये कि वह देवस्थान कौन कौन हैं—

प्रश्न ७—स्वामीजीने स० प्र० के १०० नामों की व्याख्या में जगत्के रचने से उस परमेश्वरका नाम ब्रह्मा लिखा है और आप भा० प्र० में तीन पीढ़ीतक ब्रह्माका नाम कलेवा करगये हैं—कहिये हम किसको सत्य समझें ? स० प्र० को ? या भा० प्र० को ?

प्रश्न ८—स० प्र० में स्वामीजी भूत योनि बिलकुलही नहीं मानते और आप मरीचादि से इनकी उत्पत्ति कहते हैं, कहिये अब भी भूतयोनि सिद्ध हुई या नहीं ? और अब स० प्र० के लेखको कैसा समझें ? सत्य ? या असत्य ?—

प्रश्न ९—आप भा०प्र०पृ० ५६ पं० ११ में कहते हैं, मनु अ० १ का ३७ श्लो० जो पण्डितजीने लिखा है, किसीने मिला दिया है कहिये क्या ? आप किसी प्रकार इस मिलावटको सिद्ध भी कर सक्ते हैं ? या नहीं और फिर जो आप मरीचि आदि से भूत पिशाचादि की उत्पत्ति मानते हैं, वह इसी श्लोक से ? या और किसीसे, वाह थूकना व ग्रहण करना, तो परमेश्वरने आपहीके हिस्सेमें दिया है, क्यों न हो, आप भी तो स्वामीजीके शिष्य स्वामीही हैं—

प्रश्न १०—आपने द० नं० ति० भा० के यजु० । २ । ३० का अर्थ बदल के अपने भा० प्र० पृ० १७ में उसी मंत्रका अर्थ किया है कि जो स्वार्थी जन वेष बदलते हुये पृथ्वी आकाश में घूमते हैं इत्यादि उन्हें अग्नि इसलोक से खेद देवै, कहिये तो वह स्वार्थी जन कौनहैं ? जो आकाश में घूमते हैं, और क्या अबभी खींचा तानी करके अपने डेढ़ चांवल की खिचड़ी पकातेही जाओगे व कहतेही रहोगे कि इस में भूत प्रेतादि का लेशमात्र भी कथन नहीं है, क्योंजी भूत प्रेतादि के सिवाय क्या कोई भी आकाशमें घूमने वाले आप बतला सक्ते हैं?

भा० प्र० पृ० ५ पं० २० से लिखा है कि स० प्र० के १०० नामों की व्याख्या पर पंडित ज्वालाप्रसादजी ने कुछ नहीं लिखा है मानो उसको स्वीकार कर लिया है—

प्रश्न १—क्योंजी पण्डितजीने तो इसमें भी देवशब्दका अर्थ मिथ्या बतलाया है व इसीतरह नारायण शब्द का अर्थ मनुके विरुद्ध कहा है, क्या उसपर आपकी दृष्टि नहीं पड़ी या मिथ्या लिखना आपका मुख्य कामही है—

भा० प्र० पृ० ७ पं० २५ से है कि यदि स्वामीजी या हम लोग अपनीवाली पर आते या आजावें तो वही दशा हो जो स्वर्गमें सबजेक्ट कमेटी से भली प्रकार झलकती है—

प्रश्न १—कहिये स्वामीजी महाराज निराकार ईश्वरका इजलास भी दृष्टिगोचर हुआ या नहीं ? और यदि हुआ है तो क्या उससे आपको तसल्ली नहीं हुई ?—

भा० प्र० पृ० ११ पं० १६ से (द० नं० ति० भा० की इस शङ्का का जो स० प्र० के इस लेखपर है कि धन्य है, वह माता जो गर्भाधान से लेकर जबतक पूरी विद्या हो सुशीलताका उपदेश करे) इस प्रकार लिखा है क्या आप नहीं जानते कि

आहार की शुद्धि से सत्य की शुद्धि, और सत्य की शुद्धि से स्मृति निश्चल होती, अर्थात् खाने पीने आदि व्यवहारोंका प्रभाव शील आदि पर पड़ता है और माताके अंगोंसे संतान के अंग बनते हैं—

प्रश्न १—क्योंजी सुशीलता का उपदेश करें क्या इसका यही अर्थ है कि माता भोजन उत्तम करे और यदि है तो जरा कृपाकर समझा दीजिये या स्वामीजी की भूल स्वीकार कर लीजिये—

प्रश्न २—यह भी तो कहिये कि अब खींचातानी किसकी है आपकी या पण्डितजी की ?

प्रश्न ३—आप कहते हैं कि सत्वकी शुद्धि से स्मृति निश्चल होती है पर बतलाइये तो कि माताकी, या गर्भ की होगी ? और " सुशीलता का उपदेश करें,, इससे यह कैसे सिद्ध हुआ ?

भा० प्र० पृ० १३ पं० १से (स० प्र० में सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् जो उपदेश उस पर द० नं० ति० भा० में कहा है कि आपने कोई औषधि नहीं लिखी और, यह शिक्षा स्त्रियोंको कौन करे ? आप या उनके मा बाप) इसपर स्वामी तुलसीरामजी कहते हैं कि स्वामीजी महाराजने तो स्पष्ट लिख दिया है कि पुनः संतान जितने होंगे वह सब उत्तम होंगे आपने पं० २० लिखकर २१ को जानबूझके छोड़ दिया ।

१—पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्र का प्रश्न है कि यह शिक्षा कौन देवै ? आप या उनके मा बाप, इसका आपने कोई उत्तर न दिया यह क्यों ?—

प्रश्न २—पंडितजीने द० नं० ति० भा० में यह कहां लिखा है—कि आगे सन्तान उत्तम न होगी जो आप अपने उत्तर में

लिखते हैं क्या इसी का नाम खण्डन है कि प्रश्न खेतका उत्तर खलयानका—

प्रश्न ३—स्वामीजी के पूर्व तो शायद इस बातको कोई भी नहीं जानता था, फिर स्वामीजी व अपनेको आप कैसा समझते हैं, उत्तम या निकृष्ट ?

स० प्र० पृ० ३० पं० ४ में है कि उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श से वीर्यकी क्षीणता व नपुंसकता होती है तथा हस्त में दुर्गंधि होती है इससे स्पर्श न करे—इस पर द० नं० ति० भा० का लेख है कि जब माता ऐसी शिक्षा करैगी तब लज्जा को जो स्त्रीका भूषण है कहां रख देवें ? इसके उत्तर में भास्कर प्र० पृ० १३ में लिखा है कि जो २ बातें संतानको हानिकारक हों, उन २ से सचेत करना बड़ोंका ही काम है, यदि इस प्रकार संकोच किया जावे तो संतानों की बड़ी दुर्दशा हो जैसी आजकल हो रही है—

प्रश्न १—तो क्या अब माता अपने पुत्र से यह कहा करे कि बेटा तुम इन्द्रियस्पर्श मत करो, वाह क्या अच्छी शिक्षा है भला कहिये तो कि जिस लड़के को कुछ भी समझ होगी वह क्या कहेगा ? और माता से ऐसे शब्द कैसे कहे जांयगे ?

प्रश्न २—क्या आर्य्य स्त्रियां लड़कोंको ऐसी शिक्षा देने लगी हैं ? या आपको भी कभी ऐसी शिक्षा मिली है ?

प्रश्न ३—सत्या० प्र० बनानेके पूर्व तो शायद ऐसी शिक्षा कभी नहीं हुई है, फिर बतलाइये तो क्या उस वक्त आर्य्योंमें पुरुषत्व बिलकुल नहीं था ? और यदि था तो फिर अब इस बेशरम शिक्षा देने की क्या आवश्यकता हुई—

प्रश्न ४— आपको या स्वामी जी को यह विश्वास कैसे हुआ कि * स्पर्श से नपुंसकता होती है ?

प्रश्न ५- यह तो बतलाइये कि यह शिक्षा आपने किस वेद में से निकाली है-

भा० प्र० पृ० १२ पं० ९ से फलित ज्योतिष तो बहुधा गणित शास्त्र तथा पदार्थ विद्या का विरोधी होने से त्याज्य ही है।

प्रश्न १-क्यों जी बहुत पंडितों के मुखारविन्द से ऐसा सुना है कि ज्योतिष शास्त्र वेदका एक अङ्ग है, क्या यह बात असत्य है और यदि असत्य है, तो वह वेदांग कैसे हुआ ?

प्रश्न २-अब आप कहें कि ज्योतिष का गणित सत्य व फलित असत्य है तो मैं पूछता हूं कि गणित क्यों किया जाता है और गणित करने से जो नतीजा निकलता है उस को फल नहीं तो और क्या कहते हैं ?

प्रश्न ३-आपने भा० प्र० के इसी पृ० पं० २६ से लिखा है कि जब इस प्रकार का अन्धेर असंख्य जगहों में नवीन कल्पित फलित ग्रन्थों में उपस्थित है तो भला इनके रचनेवालों को पदार्थ विद्या व गणित ज्योतिष कहां आता था ?' अब मैं पूछता हूं कि नवीन कल्पित फलित ज्योतिष आपके लेखानुसार अशुद्ध ही सही, पर प्राचीन तो सही है ? अब यदि आप कहें कि प्राचीन कोई फलित की पुस्तक नहीं है तो फिर आपने यह नवीन शब्द क्यों लिखा और जब ज्योतिष प्राचीन है तो वह क्यों न माना जावे और शन्नोग्रहा इन वेद मन्त्रों से शान्ति क्यों लिखी है।

प्रश्न ४-मान लीजिये कि नवीन फलित ज्योतिष बराबर नहीं मिलता इससे वह त्याज्य है, तो मेरा फिर प्रश्न है कि वह नवीन ग्रन्थ भी तो जब चाहें तब आपके स०-प्र० से प्राचीन ही होगा और फल बराबर न मिलने का कहा

जावे तो प्रथम तो गणित की गलती है, जिससे फल बराबर नहीं मिलता यदि सही गणित किया जावे तो फल भी उस का बराबर व पूरा २ मिल सकता है, ज्योतिष की अनेक बात सही दिखा सकते हैं सही होने से समाज छोड़ देना—

भा० प्र० पृ० १९ पं० १२ से स्वामी जी की मृत्यु पर यह लेख है परन्तु राक्षसों से उनकी लोकोपकार देख चेष्टा सही न गई और सुनते हैं कि उनका प्राण विष द्वारा लिवा लिया।

प्रश्न १—यह तो आपके स्वामी जी का कथन ही है और आपने भी उसको पुष्ट किया है कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र व फल भोगनेमें परतंत्रहै फिर कहिये कि यदि ईश्वरके समीप स्वामीजी का कर्म उत्तम होता तो फिर ऐसा बुरा फल (अर्थात् विषद्वारा प्राण हरण होना) क्यों दिलाया गया इससे तो स्पष्ट ही विदित होता है कि—जो जस करे सो तस फल चाखा। जैसा उनका बुरा कर्म था, वैसा ही उनको बुरा फल मिला।

भा० प्र० पृ० २० पं० १८ से गायत्री मंत्र में चोटी बांधकर रक्षा करने पर यह लेख है हां यह अवश्य है कि हम प्रार्थी लोग इस योग्य परमात्मा की दृष्टिमें ठहरें कि वह प्रार्थना स्वीकार करै तो इसमें संदेह नहीं कि तलवार आदि उस के सामने कोई वस्तु नहीं हैं-

प्रश्न १—यह तो लेख आपका बहुतही सत्य है, पर यह तो कहिये कि अब प्रह्लाद जी इत्यादि की कथा को असत्य कहते कुछ लज्जा आती है, या नहीं ? हां यदि उस समय ईश्वर में इतनी शक्ति न हो जो इस समय भा० प्र० बनातेमें उसको प्राप्त है तो यह बात अलग है—

स्वामी जी ने स० प्र० में एक दूसरे से दंडवत् प्रणाम आशीर्वाद के बदले नमस्ते करने की आज्ञा दी है जिसका द० नं० लि० भा० में इस प्रकार खंडन है कि इसका कोई प्रमाण नहीं और यह मनु आदि के विरुद्ध है—इस पर भा० प्र० पृ० २३ से पृ० २५ तक इस सारांश के साथ लेख है कि स्वामीजी ने अभिवादन न लिखके नमस्ते लिखा है सो अभिवादन नमस्ते इत्यादि एकार्थ है— और जड़वत् दंडवत् इत्यादि त्याज्य हैं-

प्रश्न १— जो श्लोक आपने नमस्ते की पुष्टतामें लिखा है उसमें भी तो नमस्ते शब्द कहीं नहीं आया, फिर यह शब्द क्यों लिखा गया ? इस पर यदि आप कहैं कि अभिवादन वंदना इत्यादि एकार्थ हैं तो मैं पूछता हूं कि जब अभिवादन, वन्दना नमस्ते इत्यादि एकार्थ हैं तब यह अभिवादन वन्दना इत्यादि प्राचीन शब्द मेंटकर नवीन नमस्ते का प्रचार करने की आपको व स्वामी जी को क्या आवश्यकता आ पड़ी ? और यह भी कहिये कि इस लेखसे अब यह बात प्रत्यक्ष ही झलकती है कि नहीं, कि स्वामीजी का मुख्य अभिप्राय यही था कि संपूर्ण बातों में सनातन की सुगन्धि को मिटा कर अपने डेढ़ चांवल की खिचड़ी जुदी ही पका देना।

प्रश्न २—जब जड़वत् होने से दंडवत् इत्यादि त्याज्य हैं तब मुख्य जड़ पदार्थ—लोटा, थाली छड़ी, अङ्गरखा, पृथ्वी गृह इत्यादि क्यों न त्याज्य समझे जावें' बस इन जड़ पदार्थों को और त्याग कर दीजिये, कि आप व आप के संपूर्ण अनुयायी पूरे २ स्वामी हो जावें, और वह भी ऐसे वैसे नहीं किन्तु अधरगामी व अधरवासी होजावेंगे—

प्रश्न ३—अवतो आपके लेखानुसार मा बाप को पुत्र से गुरु को शिष्य से पुरुष को स्त्री से, नमस्ते ही करना चाहिये पर अब यह भी तो बतलाइये कि आशीर्वाद, यह शब्द किस जगह उपयोग में लाया जावेगा, क्या यह भी जड़वत् है ? और क्या यह शब्द वृथा ही बनाया गया है ?—

प्रश्न ४—आपका पृ० २५ प० ४से लेख है कि आपके यहां तो मूर्ख व पंडित आदि में कुछ भेद नहीं है—मूर्ख हो या विद्वान् हो, ब्राह्मण मेरी देह है यह भगवान् का वाक्य है—आप तो मूर्ख से मूर्ख ब्राह्मण को भी शूद्रवत् नहीं कह सकते इत्यादि —अब बतलाइये कि हमारे यहां किसी प्रकार ब्राह्मणको शूद्रवत् नहीं कहते यह अच्छा है या जैसा आप ब्राह्मण को शूद्र अर्थात् धीमर, नाई, धोबी भंगी बसोर इत्यादि बनाते हैं और शूद्रको चाहे वह कोई जाति हो (केवल दो चार अक्षर पढ़के यह कह सकता हो कि शास्त्रार्थ करलो) ब्राह्मण बना देते हैं। और फिर जिसे कन्या स्वीकार करे उसी के साथ व्याह करने की सम्मति देते हैं यह अच्छा है वाह क्यों न हो आपने तो बहुत ही उत्तम आर्य्य मत स्थापन करके व भंगी को ब्राह्मण बनाके उसको यज्ञोपवीत पहिराने का, व ब्राह्मण से रास्ता साफ कराने का, मार्ग उत्तम बतला दिया है यदि इतनेपर वह लोग राजी न हों तो उनके अभाग्यहैं—देखो तो इसीपर वङ्गवासी क्या कहता है—१८ मार्च १९०१

स० प्र० पृ० ३८ में यह श्लोक (कन्यानां सम्प्रदानञ्च कुमाराणांच रक्षणम्) मनु का लिखकर अर्थ किया है, कि आठवें वर्ष उपरान्त लड़का लड़की घर में न रहैं पाठशाला में जावें यह राज नियम वा जाति नियम होना चाहिये जो

इसके विरुद्ध करें वह दण्डनीय हो इस पर द० न० लि० भा० में प्रश्न है कि इतना लम्बा चौड़ा अभिप्राय किन अक्षरों से निकाला है ? यह राज प्रकरण का श्लोक है कि राजा को योग्य है कि अर्द्ध रात्रि अथवा दो पहर को विश्राम युक्त हो मन्त्रियों सहित अर्थ धर्म काम का विचार करे वा आप ही अपने कुलकी कन्याओं के विवाह व कुमारों के विनयादि रक्षण का विचार करें—इस पर भा० प्र० पृ० २७ पं० १० से इस अर्थ व प्रकरण को मानकर भी पं० २७ में स्वामी तुलसी रामजी पूछते हैं कि बतलाइये इसमें स्वामी जी ने क्या मिला दिया। ८ वर्ष का तात्पर्य मनु के उन श्लोकों से निकाला है जो उपनयनकी अवस्था बतलाते हुये मनुने लिखाहै

प्रश्न १—कहिये क्या दिन के उजेलेमें भी आपको मशाल जलाकर दिखलाना होगा ? देखिये कि जब पण्डित जी के किये हुये इस अर्थको आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि राजा को अपनी कन्याओं के सम्प्रदान व कुमारों की रक्षा का विशेष ध्यान करना तो अ वश्य। कहिये यह सब को पाठ-शाला में भेज देना इत्यादि स्वामीजी ने अपनी ओरसे मिलाया या नहीं–

प्रश्न २—जब आपही स्वीकार करतेहैं कि यह श्लोक यथार्थ में राज प्रकरण का है तो अब उसको विद्या प्रकरण में लाना क्या बनावट व मिलावट नहीं है ?

प्रश्न ३–आप कहते हैं कि आठ वर्ष का अभिप्राय मनुके उन श्लोकों से निकाला है जो उपनयन की अवस्था में मनु ने लिखे हैं–कहिये यदि यह बात सत्य थी या है। तो क्या स्वामी जी को ऐसा ही लिखते कोई लज्जा आती थी ? जो आपको श्रम उठाना पड़ा–

प्रश्न ४-आप के लेखानुसार यदि यह भी मान लेवें कि उपनयन के पश्चात् लड़का पाठशालामें जाता है इससे उप॰ नयन की अवस्था यहां भी मिल सक्ती है तो कहिये कि ल॰ ड़की का तो उपनयन संस्कार होता ही नहीं है फिर कन्या-ओं को भी क्यों पाठशालामें आठवें वर्ष भेजने को लिखा ?

प्रश्न ५—पंडितजी का साफ प्रश्न है कि इतना लम्बा चौड़ा अर्थ किन अक्षरों से निकाला है इसका आपने यथार्थ उत्तर क्यों न दिया? आप तो सदैव अक्षरार्थ पर कटिबद्ध रहने वाले विद्वान् हैं—

प्रश्न ६—कहिये अब आप के इस लेखको स॰ प्र॰ रूपी क॰ थरी में थेगड़ी लगाना कह सक्ते हैं या नहीं ? और यदि नहीं कह सकते तो क्यों—

भा॰ प्र॰ पृ॰ २८ से ३१ तक स्वामी तुलसीराम जी इस प्र॰ कार स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार सिद्ध करते हैं कि याज्ञवल्क्य की २ स्त्रियां थी उनमें मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी यदि स्त्रियों को वेद पाठका अधिकार न होता तो वह ब्रह्म वादिनी कैसे हुई ? विद्याधरी मंडन मिश्र की स्त्री से शंक॰ राचार्य का शास्त्रार्थ हुआ इत्यादि—

प्रश्न १—कहिये कहीं श्रीमान् पण्डित ज्वालाप्रसादजी ने यह भी लिखा है कि स्त्रियों को बिलकुल पढ़नेका अधिकार नहीं है या वे स्त्रियां पढ़ीं न थीं वह तो स्वयम् लिखते हैं कि वेद छोड़के शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ पुराण इत्यादि पढ़नेका स्त्रियों अधिकार है और जब कि वह स्त्रियां पुराण इत्यादिमें पूर्ण विदुषी थीं—तब क्या असम्भव है कि उन्होंने पुराण इत्या॰ दि के द्वारा ही शास्त्रार्थ किया हो क्योंकि पुराणों में भी बहुत से विषय वेद के आ गये हैं क्या पुराणों में या वेदान्त

सूत्रों में बहुत विद्या नहीं है हमारे तो सूत्र पुराण से ब्रह्म वादिनी होती थीं पर दयानन्द के वेदभाष्य से भी कोई ब्रह्मवादिनी हुई— नियोगिनी हों तो आश्चर्य नहीं—

प्रश्न २—आपके इतने लम्बे चौड़े लेख से तो केवल यह सिद्ध होता है कि उन स्त्रियों ने शास्त्रार्थ किया (जो पुराण इत्यादि पढ़ने व विद्वानों की सङ्गति रहने से भी कर सकती हैं) फिर इस लेख से कैसे माना जावे? कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार है क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण कोई नहीं है। ब्रह्मराजन्याभ्याथ्रंश्रुतेः॥ कात्यायन सूत्रदेखो

प्रश्न ३—अब यदि आप कहें कि पुराण इत्यादि पढ़ने से कोई शास्त्रार्थ नहीं कर सकता—तो हम आपको प्रत्यक्ष दिखलाते हैं देखिये कि आपके वहुत से समाजी महान् मूर्ख जिन्हें विलकुल काला अक्षर भैंसके समान है आप लोगों की सङ्गति से कैसे २ वृथा विवाद करते हैं कि दूसरा देखनेवाला उनको सर्वथा मूर्ख नहीं कह सकता और वादाविवाद ही क्यों? आपकी सुनते २ वह भी तो यह कहने लगे हैं कि यह श्लोक मनु में, या यह वाल्मीकीय रामायण में, या यह गीता में, किसी ने मिला दिया है—कहिये यहां केवल संगति का कारण है या नहीं? और क्या इतना कहने से वह विद्वान् होगये? या उनको वेद पढ़ने का अधिकार होगया कभी नहीं, आप को यह सिद्ध करना था कि फलाने वेदमन्त्र या श्लोक से स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार है वह न करके वृथा श्रम उठाया?—

प्रश्न ४—स० प्र० में स्वामी जी ने स्वयम् लिखा है कि ब्राह्मण उपनयन कराके लड़के को शाला में भेजे, तो तब इससे स्पष्ट ही यह सिद्ध हुआ कि उपनयन होनेके पूर्व, ल-

इकी शाला में नहीं जा सकता न कुछ पढ़ सक्ता अब कहिये कि जब स्त्रियों का उपनयन संस्कार ही नहीं होता और न आप उसको सिद्ध कर सकते हैं—तब फिर स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार कहां से प्राप्त होगया —

प्रश्न ५—आपने भा० प्र० पृ० ३१ में जो यह लिखा है कि वधू विवाह में मन्त्र पाठ पूर्वक लाजा हवन करती थी तो अवश्य है कि उनका मन्त्रोपदेश व उपनयन संस्कार होता था अब मैं पूछता हूं कि कहिये तो यहां यह अवश्य शब्द की क्या आवश्यकता थी-यदि यथार्थ में स्त्रियों का उपनयन संस्कार होता था तो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्यों पंडित जी के प्रश्न करने पर भी नहीं दिया गया और जहां स्वामी जी ने लड़कों का उपनयन लिखा है वहां लड़कियों का भी नाम क्यों न लिख दिया अगर देखना है तो देखो दूसरी वार का छपा हुआ स० प्र० पृ० ३८ पं० १२ विवाह में मंत्र उच्चारण करवाने से वेद पढ़ने का अधिकार नहीं हो सकता —

प्रश्न ६—आपकी समाजों के स्थापन होनेको भी तो बहुत समय व्यतीत होगया— परन्तु आजतक किसी स्त्री के कंधेपर यज्ञोपवीत या किसी स्त्री को नियोग द्वारा संतानोत्पत्ति करते नहीं देखते यह क्यों? क्या दश दश पुत्र आप लोगों को बुरे लगते हैं?

आचमन प्रकरण ।

सत्यार्थ प्र० में आचमन का फल कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति को लिखा है व द० न० ति० भा० में इसका इस प्रकार खण्डन है कि यदि आचमन का यही प्रयोजन है,

तो क्या सभी लोग सन्ध्या समय कफ, पित्त, ग्रसित होते हैं जिसपर भा० प्र० में पृ० ३६ से ३९ तक बड़ा ही लम्बा चौड़ा लेख है और जिस पर मेरे मुख्य २ ये प्रश्न हैं—

प्रश्न १—कफ और पित्त की प्रकृति अलग २ है अर्थात् कफ ठंडा व पित्त उष्ण है फिर एक आचमन से ही दोनोंकी निवृत्ति कैसे हो सकती है—

प्रश्न २—आपने भी अपने लेख से स्वामी जी के लेख को पुष्ट व सिद्ध किया है तो अब बतलाइये कि यदि उस समय किसी का कंठ सर्व प्रकार स्वच्छ हो और उसे कोई आलस्य भी न हो तो फिर उसे आचमन मार्जन की क्या आवश्यकता ?

प्रश्न ३—कदाचित् संध्या करते २ किसी को कफ या पित्त सता देवे, या आलस्य घेर लेवे तो क्या उसको संध्या बन्द करके फिर आचमन मार्जन कर लेना चाहिये।

प्रश्न ४—आपने जो य० वे० ३६। १२ अपने प्रमाणमें दिया है उसके अर्थमें भी तो यह कहीं नहीं पाया जाता है कि आचमन कंठ कफ, पित्त निवृत्ति को है किन्तु यह लिखा है कि शारीरिक सुख के लिये जल को प्रयोग में लावें फिर यह कंठस्थ कफ निवृत्ति कैसी ? अब यदि आप कहें कि कंठस्थ कफ की निवृत्ति भी शारीरिक सुख को है तो मैं पूछता हूं कि शारीरिक सुख के वास्ते मनुष्य जूता पहिनते हैं छड़ी लेते हैं भोजन करते हैं तो अब संध्या समय यह सम्पूर्ण बातें होना चाहिये बस संध्या क्या पतुरियाका नाच होजावे

प्रश्न ५—पृ० ३९ में आपने परिक्रमा का अर्थ कियाहै कि सब ओर मन जावे, और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम ऊपर नीचे सर्वत्र परमा-

हमा को ही पावे । अब बतलाइये कि पंडितजी के सब्रह्मा स विष्णुः के थोड़े अर्थ पर तो आपको बड़ा ही खेद होकर आप अक्षरार्थ पूछते हैं और अब इन चार अक्षरों में यह उत्तर दक्षिण इत्यादि कहां से घुस पड़े ? और क्या अब हमारी वह कहावत—"कि कानी अपना टेंट न देखकर दूसरे की फुल्ली देखती है,, क्या असत्य है ? और फिर जबकि परमेश्वर सर्व व्यापी है तब यह पूरब पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे ऊपर मन को लेजाने की आवश्यकता क्या है ? और जिस ओर मनको लेजावे क्या उस में परमात्मा नहीं है ? जो पूरब पश्चिम इत्यादि में जाकर पावे और यदि है तो फिर पूरब पश्चिम इत्यादि में जाकर और किस परमेश्वर को पावे ? क्या परमेश्वर दो हैं और जब कि मनमें भी परमेश्वर स्वयं स्थित है तब यह बात कि मन से उस परमेश्वर की परिक्रमा करे यह कैसे लिखा । स० प्र० में अग्निहोत्र का फल जल वायु की शुद्धि को बतलाया है और द० न० ति० भा० में इस प्रकार खंडन है कि यदि अग्निहोत्र का फल जल वायु की शुद्धि ही है तो इन थोड़ी आहुतियों में क्या होगा ? किसी आढ़तिये की दूकान में आग लगा देना चाहिये इस पर भा० प्र० पृ० ४१ में स्वामी तुलसीराम जी कहते हैं कि यदि अन्नसे क्षुधा निवृत्ति होती है तो क्या किसी हलवाई की दूकान लूट खाइयेगा ? या अनाज की मंडी का चर्वण कर लेना उचित होगा ।

प्रश्न १–यदि हवन आपके स्वामी जी के लेखानुसार केवल जल वायु की शुद्धि को है तो फिर इसमें प्राणाय स्वाहा इत्यादि मंत्र से हवन करने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि जल वायु की शुद्धि तो सिर्फ हवन की सामग्री के धुआं

व गन्ध से होती है न कि मन्त्र से—

प्रश्न २—आपने प्राणाय स्वाहा का पृ० ४० में अर्थ किया है कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उसकी प्रसन्नता के लिये सत्य ही बोलना कपट न करना। अब कहिये इस में जल वायु की शुद्धि कहां गई।

प्रश्न ३—स० प्र० का लेख है कि मन्त्र से हवन का फल यह है कि जिस में मन्त्र कंठ होजावें अब मैं पूछता हूं कि हवन के समय मन्त्र से आहुति करना केवल मन्त्र कंठ करने को हैं तो फिर अन्य २ समय में भी मन्त्र क्यों न कंठ कर लिये जावें और फिर जब कि सत्यार्थ प्रकाश के लेखानुसार मन्त्र नाम विचार का है तब इनके कंठ करने की आवश्यकता ही क्या है (देखो स० प्र० पृ० २७५)

प्रश्न ४—हवन में दश पांच वार उच्चारण करने पर यदि मन्त्र कंठ होजावे तो फिर शेष हवनमें तो मंत्र उच्चारण करने की आवश्यकता तो न होगी? क्योंकि जिस अभिप्राय से मंत्र उच्चारण किया जाता था वह हवन पूर्ण होने के पूर्व ही सिद्ध हो चुका।

प्रश्न ५—आप कहते हैं कि यदि अन्न से क्षुधा निवृत्ति होती है तो क्या किसी हलवाई की दूकान लूट खाइयेगा? वाह क्या उत्तम बुद्धिमानी का उत्तर है। स्वामी जी क्या जैसे क्षुधा की शान्ति आध सेर अन्न से हो सकती है क्या इसी प्रकार हवन की भी हो सकती है और यदि हो सक्ती है तो फिर पृ० ४१ से पं० २८ में दो अरब आहुतिकी संख्या क्यों बतलाई गई है।

भा० प्र० पृ० ४२ में पंडित जी के गायत्री मंत्रसे हवन करने के आक्षेप पर स्वामी तुलसीरामजी कहते हैं कि यदि

यज्ञ की सामग्री विशेष हो तो गायत्री मंत्र से अग्निमें छोड़ देवे.स्वामी जी के लेख का यह तात्पर्य है।

प्रश्न १-यह क्यों ? क्या शेष सामग्री फिर उन्हीं मन्त्रों से हवन करने में कोई दोष है और यदि नहीं है तो फिर गायत्री मंत्र से जब कि उसमें हवन का कोई फल ही नहीं है क्यों शेष सामग्री हवनमें डाली जावे।

प्रश्न २—स्वामीजी के लेखानुसार तो हवन समय में मंत्र का उच्चारण करना केवल मंत्र कंठ करने को है सो गायत्री तो सम्पूर्ण आर्यों को कंठ रहतीही है फिर यहां शेष सामग्री किस अभिप्राय से उपयोग में लाई जाती है ? क्यों स्वामी जी ! कुछ अपने व स०प्र० के अगले पिछले लेखोंका ध्यान भी रहता है या नहीं।

स्त्रीशूद्राध्ययन प्रकरण

स० प्र० में लिखा है कि शूद्र को मंत्र भाग छोड़ के शेष सर्व वेद पढ़ने का अधिकार है और इसी को भा० प्र० पृ०४५ से ४७ तक में स्वामी तुलसीराम जी ने बड़े परिश्रम से सिद्ध किया है।

प्रश्न १-जब कि आप वर्ण भेद जन्म से मानते ही नहीं हैं तब बतलाइये कि यह आठवें वर्ष उपनयन किस ब्राह्मण के निमित्त है अभी तो परीक्षा नहीं हुई है कारण कि शूद्रादिका निर्णय गुरुकुल में होगा शूद्रादि को गुरुकुल में भेजने की स० प्र० में आज्ञा है (देखो स० प्र० पृ० ३४ पं० १) और शूद्र का निर्णय तो परीक्षाके पश्चात् होगा (देखो स० प्र० पृ० ७५ पं० २)

प्रश्न २-स्वामी जी ने जब कि स० प्र० में लिखा है कि

जिसे पढ़ने से कुछ न आवे उसे शूद्र कहते हैं—तो अब बतलाइये कि न पढ़ने से तो वह शूद्र हुआ अब उसको फिर पढ़ाने के वास्ते क्या यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उसको घोलकर पानी में पिलाये जावेंगे जरा समझो तो, बुद्धि तो लगाओ—

प्रश्न ३-स० प्र० में यह लिखा है कि पढ़ना लिखना आजाने पर शूद्र ब्राह्मण हो जावेगा–अब बतलाइये कि जब शूद्र पढ़कर ब्राह्मण हो जावेगा—तब फिर तो उस को मंत्र भाग पढ़ने का हर प्रकार अधिकार हो जावेगा या नहीं ? और फिर उस आठ वर्ष के समय को जो गुरुकुल में भेजनेको स्वामी जी ने लिखा है कैसा समझना चाहिये- ?

प्रश्न ४—स० प्र० के लेखानुसार ब्राह्मण उपनयन कराके व शूद्र विना उपनयन के लड़के को गुरुकुल में आठवें वर्ष भेज देवे—अब बतलाइये कि यदि ब्राह्मण का लड़का कुछ न पढ़ सका और निर्णय के पश्चात् वह शूद्र हुआ—तो वह यज्ञोपवीत जो उपनयन में दिया जायगा क्या उसके गले से उतार लेना होगा ? या, क्या ? व यदि उतार लिया जायगा तो फिर इस आठवें वर्ष में उपनयन कराके परिश्रम उठाने की क्यों आज्ञा दी गई ? व इसी प्रकार यदि परीक्षा के पश्चात् शूद्र कहीं ब्राह्मण हुआ, तो फिर उसका उपनयन संस्कार भी होना चाहिये या नहीं–और शतपथादि की व्यवस्था क्या होगी ?

प्रश्न ५—आपने पृ० ४५ में लिखा है कि (तुम कुआ में पड़ो) ऐसे दुर्वाक्य पंडित ज्वाला प्रसाद जी ने लिख कर उरहना दिया है अब मैं पूछता हूं कि जरा आंख खोल के फिर तो स० प्र० व द० न० ति० भा० को पढ़िये, कि यह कुआ में पड़ने का शब्द स्वामी जी ने लिखा है या पंडित जी

मे ? क्यों न हो पक्ष भी करे तो ऐसा ही करे ।

भा० प्र० पृ० ७५ तक स्त्रियों को वेद पढ़ने के अधिकार की खींचातानी के अन्त में स्वामी तुलसीराम जी पंडितजी को उत्तर इस प्रकार से देते हैं कि जब स्त्रियों के अनधिकार के विषयमें आप को कोई श्रुति प्रमाण नहीं मिली तो बना के ही लिख देनी थी।

प्रश्न १—पंडितजी को तो जो कुछ श्रुति प्रमाण अनधिकार मध्ये मिले हैं वह प्रत्यक्ष ही उन्होंने धर्म दिवाकर में दिखला दिये हैं परन्तु आपने जो अधिकार मध्ये प्रत्यक्ष प्रमाण कोई भी नहीं दिया कहिये इसको कैसा समझियेगा क्या आप बनाके नहीं लिख सक्ते थे।

इतिहास पुराण प्रकरण।

भा० प्र० पृ० ५५ से ७२ तक स्वामी तुलसीरामजी ने कई विषयों पर खंडन मंडन किया है और पुराणोंको एक दूसरे के विरुद्ध बतला कर उनको असत्य बतलाया है—

प्रश्न १—आपने पुराणों में बहुत कुछ एक दूसरेके विरुद्ध बतलाकर उनको असत्य कहा है और उस असत्यता को सिद्ध करने के प्रमाण में कुछ श्लोक भी लिखे हैं पर यह तो बतलाइये कि इन श्लोकों के अंक व अध्याय इत्यादि का पता आपने क्यों छोड़ दिया ? क्या पूरा पूरा पता लिखते कोई शंका होती थी ? और अब क्या इनके ढूंढ़ने को सम्पूर्ण ग्रन्थ आदि से अन्त पर्यंत पढ़ना होंगे ? आपके इस लिखने से तोयही विदित होता है कि यथार्थ में ऐसा नहीं है तभी आप पते छिपा गये हैं —

प्रश्न २—पुराणों में आप की बतलाई हुई विरुद्धता

को यदि मानभी लेवें तो भी आपको जरा द० न० ति० भा० आंख खोलके फिर पढ़ना चाहिये कि जहां पंडित जी स्वयं यह बात बतला चुके हैं कि यह व्यास जी ने उपासना भेद रक्खा है अर्थात् जिसको जो प्रिय हो और जिस का जिस रूप में चित्त लगै उसी की उपासना करे परन्तु आप के स० प्र० में तो सहस्त्रों जगह एक दूसरे के विरुद्ध लेख हैं अब इस पुस्तक को कैसा समझियेगा ? देखिये पहिले लिखा है कि आर्य लोग तिब्बत से यहां आकर रहे हैं और जबसे वह यहां आकर रहे हैं तभीसे इस देशका नाम आर्यावर्त हुआहै फिर लिखाहै कि इस देशका नाम आर्यावर्त इससे हुआहै कि आदि सृष्टि से आर्य्य लोग इस में रहते हैं—पहिले स०प्र० में मृतक पितृ श्राद्ध माना दूसरे में इसका खंडन कर दिया—पहिले स० प्र० में गंगा व कुरुक्षेत्र को पाप निवारक तीर्थ बतलाया दूसरे में सफाई कर दी—पहिले लिखा ब्राह्मण उपनयन कराके व शूद्र उपनयन विना आठवें वर्ष लड़के को शाला में भेज देवे—फिर कहा जिसे पढ़ने से कुछ न आवे वह शूद्र है—फिर लिखा कि यदि शूद्र पढ़ जावे तो ब्राह्मण व ब्राह्मण न पढ़े तो शूद्र होजावेगा—पहिले नियोग संतानोत्पत्ति और भद्रकुल का नाम स्थिर रहने को लिखा फिर कहा कि यदि गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम किये बिना न रहा जावें तो दूसरे पुरुष से नियोग करके दूसरा पुत्र उत्पन्न करले इत्यादि और वह विरुद्धताही नहीं किन्तु कई जगह असत्य भी लिखाहै—जैसा (श्येनवायु०) यह श्लोक भागवत के नाम से बनाकर झूठ लिखा है भक्तमालके नाम से काक के विष्ठा की कथा झूठ लिखी है जिसको आप भी कहते हैं कि कहीं भी लिखा होगा—इत्यादि. जिनके पूरे

लिखने से यह पुस्तक बहुत बढ़ जावेगी—अब कृपा कर आपही बतलाइये कि विरुद्धता या असत्यता किसमें भरी है

प्रश्न ३—स० प्र० का लेख है कि मनुष्य को उसी मार्ग से चलना चाहिये जिससे उसके बाप दादे चले हों (परन्तु जो बाप दादे सत्पुरुष हों तो) अब बतलाइये कि अपने बाप दादों को आप कैसा समझते हैं सत्पुरुष या मूर्ख,यदि आप सत्पुरुष समझते हैं तो बतलाइये आप उनके मार्ग को (जब कि आप उनके वीर्य से उत्पन्न हुये हैं) क्यों छोड़ते हैं? और ऐसी अवस्था में आपको कैसा समझना चाहिये? और यदि आप कहें कि मूर्ख थे तो फिर कहिये कि कहीं गधे से सिंह या सिंह से गधा उत्पन्न होते भी आपने देखा है—

प्रश्न ४—स० प्र० का लेख है कि ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में भी यदि वेद विरुद्ध हो तो वह त्याज्य है और इसी लेखकी आपने भी पुष्टता की है अब मैं केवल यह पूछता हूं कि वेद विरुद्ध होने का प्रमाण क्या है? क्या आप कोई ग्रन्थ प्राचीन लेख के या छापे के उन श्लोकों या मन्त्रों से रहित जिनको आप वेद विरुद्ध समझते हैं कभी दिखला सक्ते हैं? या जो आप के नवीन कल्पित मत के विरुद्ध है उसीको वेद विरुद्ध समझते हैं जैसा मनु के उस श्लोकको जो पिशाचादि की उत्पत्ति में आपने छोड़ा व माना है।

प्रश्न ५—क्यों स्वामी जी यह शिक्षा आप के स्वामी जी व आप व आप के अनुयायियों को किस गुरु से प्राप्त हुई है कि यदि आप के माननीय ग्रन्थों में भी कोई बात आप के विरुद्ध आ जावे तो झट आप यह कह देते हैं कि किसी ने मिला दिया क्या ऐसा कहते कुछ भी लज्जा नहीं आती—

विवाह प्रकरण

स० प्र० का लेख है कि समीप में विवाह नहीं करना और इसके सिद्ध करने में एक श्लोक मनु व कुछ भाग एक मन्त्र का लिख मारा और जिसपर पण्डित ज्वालाप्रसाद जी ने बड़ी भारी समीक्षा की है जो स० प्र० व० द० न० सि०भा० के देखने से ही विद्वानों को विदित हो सक्ती है, और बहुत करके यह भी ज्ञात हो सक्ता है कि किसका लेख समूल व किसका निर्मूल व बनावटीहै, अब इसपर भा० प्र०का प्रत्युत्तर देखिये—पण्डित जी कहते हैं कि शतपथ का मन्त्र देवता प्रकरण का है स्वामी जी ने विवाह प्रकरण में ला जोड़ा स्वामी तुलसीराम जी इसको स्वीकार करके भी कहतें हैं कि स्वामीजी ने यह दृष्टान्त दिया है कि जैसे देवता परोक्ष प्रिय हैं वैसें मनुष्योंकी इन्द्रियोंमें भी देवता रहते हैं इस कारण मनुष्योंको भी दूरसे मिली वस्तुमें अधिक प्रीति होगी इत्यादि—

प्रश्न १—क्या स्वामी जी के लेख का यही तात्पर्य है जैसा आपनें लिखा है जरा एक दृष्टि फिर तो स० प्र० को देखिये और यदि है तो फिर ऐसा ही लिखते क्या स्वामी जी को लज्जा आती थी—

प्रश्न २—आप कहते हैं कि देवता परोक्ष प्रिय हैं और मनुष्य की इन्द्रियों में देवतों का वास है इस कारण दूर की वस्तु में मनुष्य को भी अधिक प्रीति होगी अब मैं पूछता हूं कि इन्द्रियों में देवतों का वास होने के कारण दूर देश में विवाह होने से अधिक प्रीति होगी सो यह तो ठीक है पर यह तो बतलाइये कि हर मनुष्य की हर इन्द्रियों पर तो देवतों का जुदा जुदा वास नहीं है किन्तु ऐसा है कि जैसा

जिह्वा इन्द्रिय का स्वामी अग्नि या कर्णेन्द्रिय का स्वामी दिक् तो अब हर मनुष्य के घ्राणेन्द्रिय इत्यादि के स्वामी एक ही होंगे फिर जब लड़का लड़की दोनों के हर एक इन्द्रिय के स्वामी एकही हैं तो वह परोक्ष कहां रहे ? और यह आपका दृष्टान्त कैसे घटित हुआ —

प्रश्न ३—जब कि प्रीति का कारण केवल इन्द्रियों में देवतों का बास होने पर ही है और इसी कारण दूर विवाह होने से प्रीति अधिक होती है तब निज पुत्री इत्यादि से तो सदैव ही शत्रुता होनी चाहिये, क्योंकि वह जन्म दिन से परोक्ष नहीं हुये।

प्रश्न ४—जब कि देवतों के दृष्टान्तानुसार परोक्ष वस्तु में प्रीति अधिक होगी तो इसी मन्त्र में देवतों को प्रत्यक्ष से द्वेष भी है बस अब स्त्री पुरुष के प्रत्यक्ष होते ही द्वेष हो जाना चाहिये सो कभी नहीं देखा जाता कहिये यह क्यों— और यह भी तो कहिये कि अब उलटी मुंह में किसने खाई आपने या पण्डितजी ने—

स० प्र० के विवाह सम्बन्धी लेख पर पण्डित जी ने लिखा है कि ऊपर लिखी हुई स० प्र० की बातोंओं का सिद्धांत यह है कि २५ वर्ष की कन्या ४८ वर्षके पुरुष से विवाह करे, इस पर स्वामी तुलसीराम जी भा० प्र० पृ० ३६ में कहते हैं कि यह सिद्धांत नहीं है किन्तु यह सिद्धांत है—कि १६ वर्ष से २४ वर्ष तक कन्या व २५ से ४८ तक पुरुष का विवाहकाल है पश्चात् नहीं—

प्रश्न १—स्वामी जी ऐसी येगड़ी आप कहां तक लगाइयेगा देखिये स० प्र० पृ० ८१ में स्पष्ट लिखा है कि १६ वें वर्ष से लेकर २४ वर्ष तक कन्या व २५ वर्ष से लेकर ४८ तक पुरुष का विवाह उत्तम है सोलहवें वर्ष व पच्चीसवें वर्ष में वि-

वाह करें तो निकृष्ट १८ वर्ष की स्त्री ३०-३५-४० वर्ष के पुरुष का विवाह मध्यम, अब कहिये आपका सिद्धांत इस उत्तम मध्यम निकृष्ट में कहां गया—

प्रश्न २—कदाचित् किसी स्त्री का २५ वर्ष तक विवाह न होपाया और इसके पश्चात् दैव ने योग जोड़ दिया तो फिर उसका विवाह करना चाहिये या नहीं ? या नियोग द्वारा अपनी कामाग्नि बुझाया करे।

द० न० ति० भा० का लेख है कि स्त्री सदैव रूप की प्यासी रहती है यदि स० प्र०के लेखानुसार १६ वर्ष की उमर के पश्चात् उसको स्वयंवर ढूंढ़ने की आज्ञा दी जावे तो न जाने कौन जाति के पुरुष को पसंद करे इससे वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है इस पर भा० प्र० पृ० ८० का उत्तर यह है तो क्या कन्या की माता भी स्त्री होने से रूप की प्यासी होगी और वह किसी अन्य वर्ण से विवाह कर देगी, स्वयं-वर में जो स्वतंत्रता है वह वर्ण व्यवस्था तोड़ कर नहीं किन्तु अपने वर्ण में है तथा विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वाले को पसंद भी नहीं कर सक्ती।

प्रश्न १—कहिये यदि कन्या ने स्वयं वर पसंद किया और माता के पसंद न हुआ, तो अब यहां क्या होगा ? मा की चलेगी या कन्या की—

प्रश्न २—ब्राह्मण की कन्या यदि न पढ़ने से मूर्ख रहकर आपके लेखानुसार शूद्र रही तो अब उसको किस वर्णका वर ढूंढ़ना चाहिये पढ़ा लिखा ब्राह्मण, अथवा मूर्ख शूद्र।

प्रश्न ३—यदि ब्राह्मण की मूर्ख कन्या ने अपने असली वर्णानुसार किसी ब्राह्मण को वर पसंद किया और उस ब्रा-ह्मण ने उस मूर्खा को स्वीकार न किया तो बतलाइये कि ऐसी अवस्था में क्या होगा व अब वर्णव्यवस्था कैसी होगई

प्रश्न ४–आपके लेखानुसार विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव वाले को कन्या पसन्द नहीं कर सकती है और कदापि उसने ऐसा किया तो फिर क्या होगा? इस पर यदि आप कहैं कि ऐसा विवाह न होना चाहिये तो फिर कहिये यह स्वयंबर की पसंदी कैसी? और अब यह विवाह किसके विरुद्ध होना चाहिये कन्या के? या मां बाप के? अथवा सत्यार्थ प्रकाश या भास्कर प्र० के—

प्रश्न ५—यदि किसी मनुष्य की ४ कन्या हैं और वह अपने २ गुण कर्म स्वभावानुसार चारों ४ वर्ण में गईं और आप के लेखानुसार उन्होंने अपने २ वर्णमें वर भी पसंद कर लिया तो अब बतलाइये कि जब कभी वह चारों कन्यायें अपने मा बाप के यहां एकत्र होंगी तब उनका खान पान अलग २ हुआ करेगा या एक साथ–और मां बाप को कैसा वर्ताव करना चाहिये? अर्थात् सब के साथ खान पान रखना चाहिये या नहीं और यदि रक्खा जावे, तो अब उन के मा बाप का वर्ण क्या रहेगा वाह विवाह के वास्ते क्या ही उत्तम वर्ण व्यवस्था की गई है?

द० न० ति० भा० का लेख है कि जब कन्यादान शब्द विवाह में कहा जाता है तो कन्या विना पिता की अनुमति कैसे पति वरण कर सकती है? इस पर भा० प्र० पृ० ८० से यह लेख है कि आप ही अपनी विवाह पद्धतियों को देखते तो ज्ञात होता कि उनमें प्रथम यह लिखाहै—अथ वरं वृणीते—कन्या वर का वरण करती है, यह नहीं लिखा कि माता पिता कन्या से वर का वरण कराते हैं, कि इसे वरण कर। फिर एक सूत्रका आधार लेकर लिखा है पहिले कन्या स्वयं वरण कर लेवे उसी के साथ मा बाप को विवाह कर देना चाहिये।

प्रश्न १–तो अब क्या हमारी विवाह पद्धतियां भी आप के माननीय ग्रन्थों में समझी गईं। और यदि नहीं तो फिर आपने वेद को छोड़ कर इन का सहारा क्यों लिया।

प्रश्न २–आप कहते हैं कि कन्या जिसको स्वयं वरण कर लेवे, उसी के साथ मा बाप को विवाह कर देना चाहिये, अब बतलाइये कि क्या कन्या को वर पसंद करने के लिये स्वयं नगर नगर व ग्राम ग्राम फिरना चाहिये या दुनियां भर के लड़कों को उस कन्या के सन्मुख उपस्थित होना चाहिये–स्वामी जी ने तो फोटो फिरवा कर कुछ इज्जत भी रक्खी थी आपने कन्या को ही घर घर फिरवा कर व्यभिचार का द्वार पूर्ण रीति से खोल दिया—वाह, यह तो वही कहावत हुई, कि गुरु तो गुड़ ही रहे पर चेला शक्कर हो गये—

प्रश्न ३–स० प्र० में तो स्वामी जी ने केवल स्वयं वरण करने को लिखा है, वर्ण व्यवस्था कोई नहीं लिखी, और आपने पूर्ण वर्णव्यवस्था की है कहिये अब इन दो में सत्य किसको समझें?

द० न० ति० भा० में पंडित जी ने श्री रामचन्द्र जी के विवाह की अवस्था १५ वर्ष की लिखी है इस पर भा० प्र० पृ० ८२ से ८४ तक स्वामी तुलसीराम जी ने बड़े बल के साथ इस प्रकार कहा है कि वाल्मीकि जी ने विवाहकी अवस्था यौवन कही है जो १६ वें वर्ष से प्रारम्भ होती है और इस के प्रमाण में आप वाल्मी० रामा० का एक श्लोक लिख कर कहते हैं कि रामचन्द्र जी कैसे मर्यादा पुरुषोत्तम थे जिन्होंने शास्त्र विरुद्ध १५ वर्ष की अवस्था में विवाह किया। मेरी समझ में स्वामी जी का सारांश यह है कि रामचन्द्रजी विवाह में यौवन अवस्था में थे पंडित जी ने १५ वर्ष अपनी तरफ से लिखे हैं और यदि १५ वर्ष के थे तो शास्त्र विरुद्ध

विवाह करने से वह मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं हो सके क्योंकि उन्होंने शास्त्र का उल्लंघन किया।

प्रश्न १-वाल्मीकि जी ने निस्संदेह श्री रामचन्द्र जी की अवस्था यौवन लिखी है जो १६ वें वर्ष से प्रारम्भ होती है पर जरा ध्यान देकर देखिये कि बालक जन्म दिन से पूरे बारह महीना होने तक पहिले वर्ष का कहलाता है, इसी तरह सम्पूर्ण मनुष्य १५ वर्ष पूर्ण हो के १६ वें के प्रारम्भ तक १५ ही वर्ष के कहे जाते हैं, तो विचारने से यदि रामचंद्रजी की अवस्था उस समय १५ वर्ष ११ महीना ५९ घड़ी की भी थी (जो कुछ काल के पश्चात् १६ वें वर्ष अर्थात् यौवन अवस्था में आने को है) तो ऐसी अवस्था को अगर पण्डित जी ने १५ वर्ष व वाल्मीकिजी ने यौवन ही लिखा तो आप ही बतलाइये कि इसमें क्या मिलावट व क्या असत्यता है। हां अलबत्ता आप को जबरदस्ती मेरी मुर्गी की डेढ़ टांग कह कर खण्डन का नाम करना है, तो यह बात अलग है वाल्मीकीय रामायण में दशरथनें विश्वामित्रसे कहा है कि—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्ध योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥

मेरे रामचंद्र पन्द्रह वर्ष के हैं इन में राक्षसों के साथ युद्ध करने की योग्यता मुझे नहीं दिखलाई पड़ती।

प्रश्न २-यह तो आप भी मानेंगे कि रामचन्द्र जी का विवाह हमारी आप की तरह नहीं हुआ है, किन्तु वह बड़े भारी प्रण (धनुष तोड़ने) पर हुआ है जिस में राजा जनक का केवल यह प्रण था कि जो धनुष को तोड़ेगा उसीके साथ जानकी जी का विवाह होगा—यह प्रगट ही है कि उस समय भारतवर्ष में क्षत्रियही राजा होते थे कि इसी प्रणके

अनुसार जब किसी से धनुष नहीं टूट सका तब रामचन्द्र जी ने उसको तोड़ा और जानकीजी उनको विवाही गई– अब जरा सोचकर बतलाइये कि इस विवाहमें शास्त्रीय मर्यादाका उल्लंघन हुआ या पालन ? क्योंकि राजा जनकके प्रणानुसार चाहे एक वर्ष का लड़का चाहे ८० वर्ष का बुड्ढा जो धनुष को तोड़ता उसी के साथ विवाह होना था वही हुआ कहिये इसमें धर्मशास्त्र का क्या उल्लंघन है ?

प्रश्न ३—श्री रामचन्द्र जी ने उस धनुषको (जिसको कई हजार योधा पहिये लगे हुये रथ पर खींच के धनुषशाला में लाये थे और जिसको रावण इत्यादि महान् महाबली तिल भर भी नहीं उठा सके थे) ऐसा तोड़ा था जैसे हस्ती कमल नाल को तोड़ता है और जिस को तोड़ कर राजा जनक का प्रण पूर्ण किया अब कहिये कि उनको मर्यादा पुरुषोत्तम न कहैं तो क्या आप को कह सकते हैं—

प्रश्न ४—आपने पृ० ८३ में यह सिद्ध किया है कि यौवन अवस्था १७वें वर्ष से प्रारम्भ होती है और इस कारण आप मेरे ऊपर के प्रश्नों को असत्य भी कह सकेंगे परन्तु इस आपकी भूल को मैं आपही के भा० प्र० में दिखलाता हूं कृपाकर देख लीजिये कि जहां आपकी लेखनी से भी सत्य ही निकल पड़ा है कि यथार्थ में यौवन अवस्था १६ वें वर्ष से आरम्भ होती है देखिये भा० प्र० पृ० ८५ पं० १९ में पंडित जी के वास्ते आपने स्पष्ट लिखा है कि आपने १६ से २५ तक यौवन अवस्था के अर्थ को छिपा दिया बतलाइये अब ऐसे लेखों पर कहां तक विश्वास किया जावे–

भा० प्र० पृ० ८३ से ८४ तक स्वामी तुलसीरामजी ने द० न० ति० भा० में इस बात पर भी शंका की है कि आप के लेखानुसार १। ३। ५। ७ वर्ष पश्चात् जानकी जी इत्यादि

का द्विरागमन नहीं हुआ किन्तु बालकांड सर्ग ७७ श्लोक १५ में लिखा है कि भर्त्ता के साथ रमण करती भई सो क्या रा॰ मचन्द्र जी १५ वर्ष की ही अवस्था में एकान्त रमण करने लगे ? और लक्ष्मण इससे पूर्व—धन्य है महाराज, चाहिये तो यह था कि आप रामचंद्र जी के मार्ग पर चलते सो उ॰ लटे रामचन्द्रजीकोही कलियुगी बाल विवाह पर चलाने लगे।

प्रश्न १–प्रथम यह बतलाइये कि वह रामचन्द्र जी का मार्ग कौनसा है ? जिस पर हम चलते—इस पर यदि आप कहैं कि १५ वर्षमें उनका विवाह नहीं हुआ है तो अब आप ही बतलाइये कि उनका विवाह और किस अवस्था में हुआ है—

प्रश्न २—मेरे पहिले प्रश्न के उत्तर में यदि आप ठीक अवस्था न बतला कर उत्तर देवें, कि यौवन अवस्था में तो फिर इसमें पण्डित जी ने क्या भुस मिला दिया जो १५ वर्ष लिखा है कि जो बिलकुल यौवन अवस्था के समीप है–हां यदि वाल्मीकि जी ने कहीं आप के व आपके स्वामी जी के लेखानुसार रामचन्द्र जी को ४८ वर्ष व सीता जी को २५ वर्ष का लिखा हो तो आप ही बता दीजिये क्योंकि स्वामी जी के लेखानुसार ४८ वर्ष का पुरुष व २५ वर्ष की कन्या का ही विवाह उत्तम है सो जब कि वहां वशिष्ठ इत्यादि बड़े २ विद्वान् उपस्थित थे तब वह मध्यम व निकृष्ट विवाह क॰ भी न करा सकते और यदि कराया तो वहां सत्यार्थप्रकाश न होगा या वह स्वामीजी से विद्या में न्यून होंगे—

प्रश्न ३—आप पृ॰ ८२ में लिखते हैं कि आपने रामचंद्र जी के १५ वर्ष की आयुष्य का कोई प्रमाण नहीं लिखा—इस पर मुझे बड़ा संदेह होता है कि क्या आपने भी भा॰ प्र॰ लिखते समय नेत्र बन्द कर लिये थे ? या यथार्थ में आ॰

पकी दृष्टि में कोई अन्तर तो नहीं है क्योंकि पण्डित जी ने (जन षोडशवर्षो० वा० का० स० २० श्लोक २) अपने प्रमाणमें प्रत्यक्षही लिख दियाहै, फिर इतनी बड़ी भूल क्यों? एकबार फिर तो द० न० ति० भा० पृ० ६९ पं० ७ देखियेगा कि जिससे स्वामी दयानन्द जी का तिमिर तो जाताही रहा अब आपका भी निकलकर शुद्ध दृष्टि हो जावे—

प्रश्न ४—यदि आप फिर कहैं कि रामचन्द्र जी १५ वर्ष के ही थे तो भी उनका इस अवस्था में रमण करना धर्मशास्त्र के विरुद्ध है—तो मैं फिर पूछता हूं कि बतलाइये वाल्मीकि जी ने यह कहां लिखा है कि उसी समय भांवर पड़ते ही रामचन्द्र जी इत्यादि ने रमण किया और यदि नहीं बतला सकते तो फिर आपका यह लेख सर्वथा असत्य है? तुलसीकृत रामायण में साफ लिखा है कि सुन्दर वधुन सासु लै सोई ॥

प्रश्न ५— भला यह तो कहिये कि वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी की अवस्था यौवन लिखी है—जिसका आपके लेखानुसार १६ वें वर्ष से प्रारम्भ होता है—और स्वामी जी महाराज ने निकृष्ट विवाह में २५ वर्ष के पुरुष को १६ वर्ष की कन्या बतलाई है तो अब इस हिसाब से जब कि रामचन्द्र जी की अवस्था १६ । १७ वर्ष की थी तो जानकी जी ११ या ११॥ वर्ष की होनी चाहिये— कि जो पण्डित जीने लिखा है अब कहिये कि क्या वाल्मीकि जी नें भी असत्य लिखा है और यदि नहीं लिखा तो फिर पण्डित जी के लेख में क्या असत्यता है ।

प्रश्न ६—अब यदि आप फिर कहैं कि जानकी जी इत्यादि की अवस्था फिर भी उस अवस्था से कम थीं जिस का पण्डित जी ने एकान्त रमणके वास्ते निषेध किया है—

तो स्वामी जी महाराज—पंडितजी ने यह लेख मनुष्यों के वास्ते लिखा है न कि उस परब्रह्म परमेश्वर रामचन्द्र जी व जगन्माता सीता जी के वास्ते है और इतने पर फिर भी अपनी टेक न छोड़कर रामचन्द्र जी को मनुष्य ही कहते जावें तो मैं फिर भी आप से प्रश्न करता हूं कि रामचन्द्रजी ने इतने बड़े धनुष को किस प्रकार तोड़ा था—जैसे हस्ती कमल नाल को तोड़ता है फिर आप भी तो मनुष्य हैं—आप एक फुट मोटी लकड़ी ही एकदम तोड़ दीजिये—श्रीरामचन्द्रजी के एक किंकर महावीर एक छलांग में इतना बड़ा समुद्र कूद गये थे-आप एक १० हाथ का नाला ही कूद जाइये—और जो नहीं कूद सक्के तो अब भी कह दीजिये कि वह परब्रह्म थे व हम मनुष्य हैं—

प्रश्न ७—अब रहा एकान्त रमण के मध्ये सो रमण का अर्थ क्रीड़ा करना है स्त्री प्रसंग का ही नहीं है तो यह भी अर्थ होता है कि वह क्रीड़ा करते थे पर आप की तो दृष्टि उधर ही जायगी आपका भाव ही ऐसा है नियोग प्रचारकों में हो ना ? जब कि वह साक्षात् परब्रह्म थे तब उनके लिये १५ वर्ष क्या थे देखिये श्री महाराज कृष्णचन्द्र जी की १६१०८ पटरानी थीं और हर रानी से उन्होंने १०—१० पुत्र व १-१ कन्या उत्पन्न किये थे अब आप ४ ही स्त्रियों से एक एकही पुत्र उत्पन्न कर दीजिये और यही उपाय अपने समाजियों को बतला दीजिये कि जिस में इस निर्लज्ज नियोग की तो आवश्यकता न रहे—और बेचारी स्त्रियों को निर्लज्ज होकर अन्य १० पुरुषों के सामने तो नग्न न होना पड़े या यह कह दीजिये कि वह बल वीर्य युक्त थे और हम निर्बल व नपुंसक हैं—तब फिर भी मैं यह पूछूंगा कि अब भी उन

को मनुष्य कहते व उनकी बराबरी करते कुछ लज्जा होगी या नहीं–

आपने पृ० ८४ पं० ५ से यह भी लिखा है कि अथवा आ-ज कल के लोगों की भांति राम लक्ष्मणादि की स्त्रियां भी (बड़ी बहू घर छोटे लाला) की भांति थीं–धन्य है स्वामी जी महाराज आपकी बुद्धि व आपकी समझ पर कि जो जी में आया ऊटपटांग लिख मारा—भला कहीं द० न० ति० भा० या सनातन धर्म के किसी ग्रन्थमें अथवा प्रत्यक्षमें आ-पने ऐसा देखा है कि जिसमें यह कहावत आप की घट जावे व यदि आप किसी ग्रन्थ से इसको नहीं घटा सकते—या नहीं दिखा सकते–तो फिर हम को यह अवश्य ही कहना होगा कि बातल, भूत, विवश, मतवारे । यह नहिं बोलहिं बचन सम्हारे ।। या वह गंवारी मसल याद करना होगी कि "सूझै ना बूझै नैनसुख नाम„–पर इस बात का भी ध्यान रखिये कि इस बहू बड़ी घर छोटे लाला को सनातन धर्मही में सिद्ध कीजिये और अपनी समाजको इस बीच में न ला-इये कि जहां कन्या को सर्व प्रकार की स्वतंत्रता दी गई है कि जिससे १५ वर्ष की लड़की यदि १२ वर्ष के लड़काको स्वी-कार कर लेवे तो भी माता पिता को कर ही देना अवश्य है—क्यों न हो स्वामी जी समाजियों में तो आपने खंडन का नाम कर ही लिया ।

श्रीमान् पंडित ज्वालाप्रसादजीने द०न० ति० भा० पृ० ६९ पं० १६से पूर्व १५–२० वर्षकी अवस्थामें विवाह करदेने के कुछ प्रमाण लिख कर पं० १६ से लिखा है कि इस समय तो पंद्रह बीस वर्ष की अवस्था में विवाह कर ही देना चाहिये । क्यों-कि इस समय सब लोग जो चारों वर्ण के हैं बहुधा बालकों को फारसी पढ़ाते हैं और इस फारसी ने ऐसी दुर्दशा कर

दी है कि थोड़ी अवस्था ही में बालक फारसी के शेर गजल आदि पढ़कर कामचेष्टा में अधिक मन लगाते हैं और अनुचित प्रीति करके तेल फुलेल डाले चिकनियां बने फिरते हैं जिन की स्त्रियां हुईं वह तो कथंचित् ठीक रहते हैं जिन के न हुईं वह बाजार में जाकर अथवा शून्य मन्दिरों में बैठ कर वीर्य का स्वाहा करने लगते हैं जिससे कि उपदंश मूत्रकृच्छ होकर बस ३० वर्ष तक खातमा हो जाता है इत्यादि अब इसका उत्तर स्वामी तुलसीराम जी ने भा० प्र० ८४ पं० १६ से लिखा है वह यह है कि यह तो लोगों का अपराध है कि बालकों को शेर गजल दीवान पढ़ाके बिगाड़ते हैं शास्त्र का अपराध नहीं आप से यह तो न बना कि उपदेश और पुस्तक द्वारा इस कुशिक्षा को रोकते किन्तु इस से यह फल निकालने लगे एक तो कुशिक्षा ही बालकों की दुर्दशा कर रही है तिस पर बालविवाह का तुर्रा ॥

प्रश्न १—क्यों स्वामी जी महाराज क्या पंडित जी के लेख का यही तात्पर्य है जो आपने निकाला जरा फिर तो देखिये क्यों क्या इसी का नाम खंडन है कि प्रश्न कुछ और उत्तर वही स्वामी जी कैसा भंग की तरंग का—

द० न० ति० भा० का लेख है कि १६ वर्ष तक वृद्धि अवस्था और २५ से लेकर ४० तक पूर्ण अवस्था पश्चात् कुछ घटने लगती है उस अवस्था में विवाह किया तो बस २—३ वर्ष में पूर्ण जरा ग्रस्त होने पर वृद्ध को तरुणी विष है बहुल प्रसंग वृद्ध को भाता नहीं बस वह स्त्री किसी नवयुवा की खोज करके धर्मच्युत हो जाती है और जो कहो कि ब्रह्मचर्यसे आयुष बढ़ती है तो यह भी नहीं देखा जाता क्यों कि स्वामी जी ने तो पूर्णता से ब्रह्मचर्य धारण किया था परन्तु ५८ वर्ष की अवस्था ही में शरीर छूट गया यदि स्वा-

मी जी का ४८ वर्ष की अवस्था में २० वर्ष की स्त्री से विवाह होता तो आज वह बेचारी सिर पटकती या नहीं इस पर भा० प्र० पृ० ८४ में स्वामी जी का लेख है कि यह लेख इस लिये व्यर्थ है कि जो कोई ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रक्खेगा वह शीघ्र वृद्ध नहीं होगा प्रत्यक्ष है कि स्वामी जी महाराज ५९ वर्ष की आयु तक पहलवानों से अधिक बलिष्ठ व पराक्रमी थे परन्तु किसी जगदुपकार विरोधी ने उन्हें विष देकर मार डाला नहीं तो १०० वर्ष तक जीते रहते—

प्रश्न १—जब कि ब्रह्मचर्य रहने पर भी आप के लेखानुसार आयुष्य नहीं बढ़ती है तब फिर ४८ वर्ष की वृद्धावस्था में विवाह करने से क्या लाभ सोचा जाता है? या क्या यह तो नहीं है कि अन्तिम जिन्दगी में रोने व चूड़ी फोड़ने को स्त्री अवश्य ही चाहिये और इस में नियोग अथवा व्यभिचार की भी वृद्धि हो सकती है—

प्रश्न २—पण्डित जी के लेख में पहिली तीन चार पंक्तियों का आप ने कोई उत्तर न दिया यह क्यों? खैर इस का उत्तर मैं लिखे देता हूं कि वह स्त्री धर्मच्युत न होगी किन्तु नियोग द्वारा अपनी कामाग्नि बुझा लेगी व यदि कोई पुत्र हो गया तो उससे अपने पति का नाम चला लेगी यदि इस पर कोई शंका करें कि कदाचित् एक बार में उस की कामाग्नि ठंडी न हुई तो फिर क्या होगा इसका मैं यह समाधान करता हूं कि भाई नियोग कुछ एक ही दिन को नहीं है वह स्त्री तो जबतक पुत्र उत्पन्न न होजावे दिन प्रति दिन नियोग कर सक्ती है और यदि एक पुत्र उत्पन्न होने पर भी उस स्त्रीकी कामाग्नि सुलगती ही जावे तो फिर स्वामी जी ने नियोग द्वारा दश सन्तान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है जिस में कम से कम १५-२० वर्ष का समय व्य-

तीत होकर उस स्त्री की अवस्था व्यतीत हो सक्ती है और इतने पर भी यदि वह जीती रहे तो फिर उससे बढ़कर निर्लज्ज कौन होगा कहिये यह उत्तर मेरा ठीक है या नहीं?

प्रश्न ३—जब कि स्वामी जी पूर्ण ब्रह्मचारी व पराक्रमी महात्मा थे और आप स्वयं स्वामीजी को महर्षि कहते हैं तब क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इतने बड़े महात्मा को न कुछ बात विष का भी ज्ञान न हुआ कि इस में विष है और यह वशिष्ठ विश्वामित्र जी इत्यादि कैसे थे जो तीन काल की बात जान लेते थे। कहिये अब महर्षि उन महात्माओं को कह सक्ते हैं या इन आप के स्वामीजी को? शंकरस्वामी का चरित्र देखिये गरम कांच का भी असर न हुआ।

प्रश्न ४—मान लीजिये कि आप के स्वामी जी को इतना ज्ञान नहीं था कि जो वह गुप्त बात को जान सक्के, तो क्या उनमें इतना पराक्रम भी नहीं था कि जो किञ्चित् विषको पचा लेते देखिये महाभारत आदि पर्व कि जहां दुर्योधन ने हलाहल विष रसोइयों द्वारा भीमसेन को दिलवाया था, जिस की वायु तक मनुष्यों को दुःसाध्य थी परन्तु उस विष से भीमसेन का एक बाल भी टेढ़ा न हुआ, अब कहिये, सत्यव्रत पराक्रमी उन भीमसेन को कहना चाहिये, या आप के स्वामी जी को जो न कुछ विष के द्वारा मौत के सोत में प्रवेश कर गये—

प्रश्न ५—आप लिखते हैं कि यदि १०० वर्ष जीते तो जगत् का उपकार होता—अब मैं पूछता हूं कि भला यह तो बतलाइये कि ५८ वर्ष की आयु में स्वामी जी से सिवाय विधवाओं को दश दश पति कराने—और नियोग द्वारा स·

न्तान उत्पन्न करके व वर्ण संकर पैदा कराने से और जगत् में किसका क्या उपकार हुआ है? बहुत क्या जो स्वामी जी अपना ही उपकार न कर सके—उनसे बतलाइये तो कि जगत् के उपकार की कैसे आशा हो सक्ती है? हमारी समझ में तो आपके स्वामी जी को महर्षि व ब्रह्मचारी कहना यथार्थ में ऐसा है कि नाम तो रणधीरसिंह काम है दलाली का—

द० न० ति० भा० में पण्डित जी ने उ० प्र० के इस लेख पर कि लड़का लड़की के विवाह को फोटो व जीवन चरित्र मिलाया जावे बहुत कुछ समीक्षा की है और जिसपर नवीन स्वामी जी ने बड़ा लम्बा प्रत्युत्तर लिखकर भा० प्र० पृ० ९२ पं० ४ से लिखा है कि लड़का लड़की के बाहरी अङ्गों की तुल्यता फोटो से भले प्रकार विदित हो सक्ती है और आन्तरिक गुण दोषों की तुल्यता जीवनचरित्र में।

प्रश्न १—मैं पूछता हूं कि यह फोटो नग्न करके लिये जावेंगे या वस्त्र पहने पर अब यदि आप कहैं वस्त्र पहिनकर तो फोटो में तो ऊपरी वस्त्र का चित्र आयगा न कि भीतरी अङ्गों का फिर यह अङ्गों की तुलना कैसे होगी और जो आप कहैं कि नग्न होकर तो फिर कहिये कि २५ वर्ष की लड़की व ४८ वर्ष के लड़के को नग्न होते कुछ लज्जा होगी या नहीं और यह फोटो कितना सुन्दर होगा इसको आप स्वयं ही समझ लेंगे—हां इस में तो संदेह नहीं कि लड़का लड़की के सम्पूर्ण अङ्गों का मिलान क्या कोई चाहै तो शायद नाप तक अच्छी प्रकार होसकेगा—

प्रश्न २—आप इसी भा० प्र० में प्रथम लिख आये हैं कि कन्या को स्वयं वर की खोज करना चाहिये और यहां फिर आपने फोटो का ढकोसला चलाया है कहिये अब इस में सत्य किसको समझें—

प्रश्न ३—आपने अन्तरिक्ष गुण दोषों की पहिचान व मिलान को जीवनचरित्र बतलाया है—अब मैं पूछता हूं कि यदि लड़का या लड़की को प्रमेह इत्यादि की कोई गुप्त बीमारी हुई जो प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती या लड़का प्रत्यक्ष देखनेमें इन्द्रोरन के फल के समान उत्तम हो व यथार्थ में नपुंसक हो तो बतलाइये कि इस जीवनचरित्र से इसकी क्या पहिचान होगी।

प्रश्न ४—मान लीजिये कि यदि जीवनचरित्र से किसी लड़के को गरमी इत्यादि की बीमारी पाई गई तो अब क्या इसके मिलानके लिये लड़की भी इसी रोगवाली होनी चाहिये या क्या? नहीं तो आपका मिलान शब्द लिखना व्यर्थ होजावेगा।

प्रश्न ५—भा० प्र० पृ० ९४ में लेखराम जी के लेख पर स्वामी जी के जीवनचरित्र को बहुत पुष्ट किया है अब मैं पूछता हूं कि क्या पण्डित जियारामजी ने जो द० न० छल कपट दर्पण नाम से स्वामीजी का जीवनचरित्र लिखा है वह क्या असत्य है? जरा एक वार उस का भी तो अवलोकन कीजियेगा—

स्वामीजी के स० प्र० के विवाह सम्बन्धी निर्लज्ज लेख व आकर्षण इत्यादि पर पण्डित जी ने द० न० लि० भा० में बहुत कुछ समीक्षा की है और जिस के प्रत्युत्तर में स्वामी तुलसीरामजी भा० प्र० पृ० ९७ पं० १६में लिखते हैं कि विवाह करने की इच्छा प्रयोजन तथा अन्य सर्व साधारण के सामने न पूछने योग्य कई बातें सम्भव हैं, क्या वे निर्लज्जतासे सब के सामने पूछी जातीं तब सनातन धर्म पूरा होता—

प्रश्न १—स्वामी जी महाराज प्रथम यह तो बतलाइये कि वह निर्लज्जता की कौन बातें हैं जिनके पूछने की ल-

इका लड़कियों की आवश्यकता है ? और क्या यह बातें इ-सते भी बढ़के हैं कि स्त्री सीधी पड़े डिगे नहीं नासिका के सन्मुख नासिका, नेत्र के सामने नेत्र करें, और पुरुष वीर्य छोड़े स्त्री आकर्षण करे, इत्यादि जिनको पूरा २ लिखते लेखनी को भी लज्जा आती है और यदि नहीं है तो फिर सनातन धर्म पर क्यों दोष लगाया जाता है—भला अयभी तो सच कहिये कि इसमें निर्लज्जता किस की है व निर्लज्ज कौन है ?

प्रश्न २—जब कि विवाह करने की इच्छा इत्यादि सर्वसाधारण के सन्मुख पूछना निर्लज्जता है, तब क्या इस पूछ पाछ के वास्ते विवाह के पूर्व लड़का लड़की को कुछ समयके लिये एकांत सेवन करना होगा—या क्या ? वाह यह बात तो आर्यधर्म की बहुत ही उत्तम है और ऐसा होने से निःसंदेह लड़का लड़की हरप्रकारकी पूछपाछ व परीक्षा करलेंगे।

प्रश्न ३—आपने लिखा है कि विवाह करने की इच्छा प्रयोजन तथा-अन्य कई बातें सर्वसाधारण के सन्मुख न पूछना सम्भव है—अब मैं पूछता हूं कि यहां प्रयोजन शब्दसे क्या तात्पर्य निकाला गया है ? क्या यह तो नहीं है कि जब नियोग से भी काम चल सक्ता है तब विवाह करने से क्या प्रयोजन है—

भा० प्र० पृ० ९८ से ९९ तक स्वामी तुलसीरामजी ने विवाह पद्धति का सहारा लेकर बहुत कुछ कटाक्ष किया है पर कहिये तो आप ने इस लेख में श्लोकों का नम्बर इत्यादि क्यों नहीं दिया ? और क्या अब भी आप यह पूरा पूरा लेख किसी विवाह पद्धति में दिखला सक्ते हैं ? और यदि नहीं दिखला सक्ते तो कहिये यह बात कुछ लज्जा आने की है या नहीं ?

भा० प्र० पृ० ९९ से १०० तक महाभारत आदि पर्वके सहारे आपने उतथ्य ऋषि व उनकी ममता की कथा लिखकर द० न० ति० भा० के लेख का खंडन किया है—और अन्तिम पृ० १०१ में लिखा है कि यदि ऐसी घिनोनी शिक्षा से आप को घृणा नहीं आती तो भाग्य—

प्रश्न १—आपने इस कथा में लिखा है कि ममता उतथ्य से गर्भवती थी और वैसे ही में बृहस्पति ने ममता से भोग किया कि उस गर्भस्थित बालक ने पहिले रोका और जब उस के रोकने पर भी बृहस्पति ने न माना तब उस बालक ने बृहस्पति के शुक्र को एड़ी से रोक दिया अब मैं पूछता हूं कि जब गर्भस्थित बालक को भी यह बात अच्छी मालूम न हुई कि एक गर्भ पेट में स्थित रहते दूसरे का वीर्य स्त्री के पेट में आवे तब आप व आपके स्वामी जी कैसे बुद्धिमान् हैं जो स्त्री को गर्भवती रहते भी नियोग की आज्ञा देते हैं और अब बुद्धिमान् उस लड़के को कहना चाहिये नकि आपके समान संभोग की आज्ञा है—

स० प्र० में (त्रीणिवर्षाणि) श्लोक लिख कर उसके अर्थ में लेख है कि कन्या रजस्वला हुए, पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति को खोज कर अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे, इस अर्थ को पण्डित जी ने अशुद्ध बतला कर द० न० ति० भा० में इस प्रकार अर्थ किया है कि जिस कन्या के माता पितादि न हों वह ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक अपने कुटुम्बियों की प्रतीक्षा करे कि वह विवाह करदें, जब वह समय बीत जाय तब अपनी जाति के पुरुष को जो अपने कुल गोत्र के सदृश हो वरण करले इस पर भा० प्र० के पृ० १०३ पं० ११ में यह प्रत्युत्तर है कि हम आप के अनर्थ को हटाने के लिये एक श्लोक इसके पूर्वका भी लिखे देते हैं (काममामर०) मनु०

९। ९०॥ अर्थ पुत्री रजस्वला हुई चाहै मृत्यु पर्यन्त भी रहे परन्तु इस को गुणरहित पति के लिये नहीं देवै क्वारी कन्या रजस्वला हुई तीन वर्ष खोज करे और इस समय में ऊपर तुल्य पति को प्राप्त हो।

इस पर मेरे प्रश्न।

प्रश्न १—स्वामी जी ने लिखा है, कन्या रजस्वला होने पर तीन वर्ष में पतिको प्राप्त हो और बहुत करके कन्या ११ या १२ सालकी आयुमें रजस्वला होजाती है तो इस हिसाबसे १४ या १५ वर्ष में कन्या को पति सहित होजाना चाहिये तो अब बतलाइये कि वह २४ वर्षका उत्तम विवाह किस नदीकी धार में बह गया, यहां तो १६ वर्षभी नहीं होते।

प्रश्न २—आपने अपने अर्थ में लिखा है कि कन्या को मृत्यु पर्यन्त भी गुण रहित पति को न देवै अब बतलाइये कि (न देवै) शब्द से कन्या मा बाप के आधीन समझी जाती है। या अब भी स्वतन्त्र है—

प्रश्न ३—कहिये यह दोनों बातें अब स० प्र० के विरुद्ध हैं या नहीं? और अब आप व स्वामी जी के लेखमें किस को असत्य समझें।

द० न० ति० भा० के इस लेखपर कि शास्त्रानुसार कन्या से दूना वर उत्तम व डौढ़ा मध्यम है इसपर भा० प्र० पृ०१०४ में लिखा है कि इस हिसाबसे दो दिन की कन्या को तीन दिन का वर चाहिये—

प्रश्न १—कहिये तो महाराज कि कहीं दो दिनकी कन्या का भी आपने विवाह देखा है और यदि नहीं देखा तो यह दिनों का हिसाब किस वेदानुकूल लगाया गया है और यदि ऐसा ही है तो आप के स्वामी जी ने स० प्र० में २४ वर्ष की कन्या व ४८ वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम बतलाया है अब

कहिये कि यदि ४८ वर्ष की कन्या हो तो उस के लिये ९६ वर्ष का पति ढूंढोगे—

द० न० ति० भा० में लिखा है कि गौतम जीने जावालि से पूछा कि हे सौम्य तेरा क्या गोत्र है ? जावालि बोले यह मैं नहीं जानता मैंने यह मातासे पूछा था उसने कहा मैं घर के काम काज में फंसी रही थी युवावस्थामें तेरा जन्म हुआ पिता परलोक सिधारे मुझे गोत्र की खबर नहीं, इत्यादि इस पर भा० प्र० के पृ० १०५ में यह प्रत्युत्तर है कि स्वामी जी ने तो जावालि का नाम ही लिखा था आपने प्रमाण सहित व्यौरा लिख दिया जावालि की माता के इस कहनेसे कि न जाने तू किससे पैदा हुआ मैं नहीं जानती और ऐसाही जावालि ने गौतमजी से स्वीकार किया तो सत्यवादित्व व सरलता जो ब्राह्मणके गुण हैं उन्हींसे तो गौतमने उसे ब्राह्मण मान लिया इत्यादि ।

प्रश्न १—कहिये तो स्वामी जी महाराज आप यह बराजोरी कहां तक चलाते जांयगे धन्य है महाराज आप ऐसे आर्य महात्माओं को कि दिन दो पहर भी आंखमें धूल डाल के मनुष्यों को भुलाने में कमी नहीं करते जरा बतलाइये तो कि गोत्र व वर्ण एक बात है या दो ? और जब कि गोत्र व वर्ण भिन्न २ हैं तो द० न० ति० भा० में पण्डितजीके लेख को फिर तो देखिये कि गौतम जी ने जावालि ऋषि से गोत्र पूछा था या वर्ण और जब कि उन्होंने गोत्र पूछा व जावालि ने गोत्र का ही उत्तर दिया तब आप उस को क्यों वर्ण में अपना मतलब साधने को खींचते हैं —

प्रश्न २—आपके प्रत्युत्तरसे ऐसा पाया जाता है कि जावालिकी माता ने उसके प्रश्न करने पर ऐसा उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है भला कहिये तो ऐसा

उत्तर कहां लिखा है और आपने इसे कहांसे ला मिलाया ?

प्रश्न ३– यह भी तो बतलाइये कि पुत्र के पिताका नाम माता को मालूम न होगा तो क्या पड़ोसियों को मालूम हो सक्ता है हां अलबत्ता वह आर्यस्त्रियां जो स्वामी जी के लेखानुसार दिन रात नियोग में मग्न रह कर पुत्र उत्पन्न करती हैं ऐसा कह देतीं तो कोई आश्चर्य भी न था ।

प्रश्न ४—जबकि इस संसारमें सिवाय माताके पुत्रके पिता का नाम ठीक कोई नहीं जान सक्ता है तब कहिये कि आप के इस वृथा लेख का कहां तक विश्वास किया जावे ।

प्रश्न ५–आपनें लिखा कि गोत्र शब्द की ध्वनि यहां वर्ण परक है गोत्र के ऋषि परक नहीं इत्यादि अब कहिये तो क्या मुनीश्वर से और वर्ण शब्द से कोई द्वेष था ? जो व· र्णोच्चारण का ठीक शब्द उच्चारण न करके गोत्र द्वितीय अर्थ वाची शब्द उच्चारण किया और आप को तात्पर्य नि- कालना पड़ा–धन्य है महाराज ! बबूर वृक्ष में तात्पर्य रूपी रसाल फल लगा देना भी तो ईश्वर ने आप ही के भाग्य में दिया है बस पण्डिताई तो देख ली—

स० प्र० का लेख है कि ब्राह्मण विद्या पढ़ने से होता है । रज वीर्य से नहीं जैसा कि विश्वामित्र होगये इस पर पण्डित जी ने सिद्ध किया है कि विश्वामित्र जी तपके बल से ब्राह्मण हुए थे न कि विद्यासे वे बीजसे ब्राह्मण थे इसपर भा० प्र० पृ० १०५ में यह प्रत्युत्तर है–यही हम कहते हैं कि यदि कोई नीचवर्ण तप आदि शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त होजावे–तो चतुर्वेदविद् ब्रह्मा संज्ञक विद्वान् की दी हुई व्यवस्था से वह ब्राह्मण होजाना चाहिये विश्वामित्र विद्वा- न् थे परन्तु क्षत्रियपद योग्य विद्वान् थे ब्राह्मणपद योग्य, तप करने से ब्राह्मण कहलाये केवल विद्या पढ़नेसे ब्राह्मण हो·

ना स० प्र० में भी नहीं लिखा किन्तु शम दमादि सर्वलक्षण सम्पन्न होने से माना है—

प्रश्न १—आप लिखते हैं कि स० प्र० में भी केवल विद्या ही पढ़ने से ब्राह्मण होना नहीं माना है किन्तु शम दमादि सम्पूर्ण लक्षण संपन्न होनेसे मानाहै अब बतलाइये इतना असत्य क्यों ? और क्या आप यह समझते हैं कि स० प्र० कोई देखता ही न होगा—जरा एक दृष्टि फिर तो स० प्र० पृ० ८५ प० २१ व पृ० ८६ पं० ३ व पृ० ८८ पं० ३ को देखिये कि आपका यह लेख सत्य है कि असत्य ?

प्रश्न २–मैं आपकी बुद्धिमानी व लेख की किसी प्रकार प्रशंसा नहीं कर सकता—जरा फिर तो देखिये कि अभी १० ही पंक्ति ऊपर आप जाबालि की कथा से यह लिखकर चुके हैं कि सत्यवादित्व व सरलता से गौतमजी ने जाबालिको ब्राह्मण माना था ऐसा ही अब होना चाहिये—अब कहिये यहां वह तप से ब्राह्मण होना आपका कहां चला गया अब तो यह ही कह देना आप का ठीक होगा–कि जाबालि कुछ थोड़ी सी अवस्था में भी तप कर चुका था–या यह कह दीजिये कि हम को ऊपर के लेख का ध्यान नहीं रहा विश्वामित्र के तो चरु में ब्रह्मतेज स्थापित था।

प्रश्न ३—आपके लेखानुसार अब भी कुछ तप करने से शूद्र इत्यादि ब्राह्मण हो सक्त हैं तो अब मैं फिर पूछता हूं बतलाइये कि आपकी समाज में जिनको आप इस समय ब्राह्मण मान रहे हैं उनमें से किसने किसने क्या क्या तप किया है और यदि नहीं किया है तो उन सब को शूद्रवर्ण में निकाल दीजिये और यह शर्मा शब्द उनका छीनकर वर्मा लगा दीजिये (कितने समाजी शर्मा वर्मा के योग्य हैं बतलाइये तो)

प्रश्न ४-आपने यह भी लिखा है कि विश्वामित्र विद्वान् थे परन्तु क्षत्रियपद योग्य विद्वान् थे-फिर ब्राह्मण पद योग्य तप करने से ब्राह्मण कहलाये अब इस लेख से तो प्रत्यक्ष ही यह बात निकलती है-कि विश्वामित्र जो तप करने से ब्राह्मण हुए थे फिर ऊपर इसके विरुद्ध आपने यह क्यों लिखा कि वह क्षत्रियपद योग्य विद्वान् थे क्या आपके इस लेखसे यह बात नहीं निकलती कि विशेष विद्या होने से भी ब्राह्मण होसक्ते हैं।

प्रश्न ५-यह भी तो बतलाइये कि विश्वामित्रजी में कितनी विद्या थी जो वह क्षत्रियपदके योग्य समझी गई और कितनी होने से मनुष्य ब्राह्मण होसक्ता है-

प्रश्न ६-और यह भी कह दीजिये कि जो स्वामी जी ने स०२ प्र० पृ० ९९ पं० २८ में लिखा है कि सांगोपाङ्ग चारों वेद के जानने वालों को ब्रह्मा व उससे न्यून हो, उसको ब्राह्मण कहते हैं अब इस लेखको कैसा समझना चाहिये और हम अब किसको असत्य कहैं स० प्र० को या भा० प्र० को ?

प्रश्न ७-आप ने पृ० १०६ में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से जिसका नाम प्रथम ब्राह्मण था वह काठ के हाथी के समान लड़कों के खिलौना रूप ब्राह्मण हैं अर्थात् बालकों के समान अज्ञानी पौराणिक उसे ब्राह्मण ही मानते रहते हैं परन्तु वह तृण की अग्नि के समान हैं जैसा तृण अग्नि में अग्नि नहीं रहती वैसे ही गुण कर्म स्वभाव हीन होने से वह ब्राह्मण नहीं रहता अब फिर भी तो कहिये कि वह तप कहां गया और आप फिर यहां क्या लिखने लगे---

स० प्र०में (अङ्गादङ्गात् संभवसि) यह मंत्रका टुकड़ा लिखा है जिससे पण्डित जी महाराज ने यह सिद्ध किया है कि जब

पुत्र पिता के अङ्ग २ से उत्पन्न होता है तब ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण क्यों न हो ?–इसपर भा० प्र० पृ० १०६ पं०२७ में लिखा है—ठीक है कि पिता माता के अङ्ग २ से सन्तान उत्पन्न होती है—परन्तु सन्तान का देह मात्र उत्पन्न होता है आत्मा नहीं इस लिये आप यदि प्रमाण देते जिस में देहका नाम ब्राह्मण होता—तो ब्राह्मण देह से दूसरे ब्राह्मण देह की उत्पत्ति माननीय होती–

प्रश्न १—प्रथम यह बतलाइये कि मनुष्य इत्यादि की पहिचान देहसे होती है या जीवात्मा से, और जब कि सम्पूर्ण बातें पहिचान इत्यादि इस देह ही के साथ हैं–तब क्यों इस देहको ब्राह्मण न माना जावे ? क्या आप जीवात्मा की भी कोई जाति या पहिचान सिवाय देह धरे के बतला सकते हैं—

प्रश्न २—यह जीव अजाति है और अपने कर्मानुसार सम्पूर्ण योनियों में जाता है और जिस योनि में जाता है उसी के अनुसार इसकी जाति वर्ण नाम इत्यादि होते हैं फिर आप के लेखानुसार किसी समय यह जीव जो इस समय ब्राह्मण है यदि कर्मानुसार किसी गाय के पेट में जन्म लेवे तो कहिये कि आप उस समय उसको ब्राह्मण कहेंगे या बैल ? और फिर उसकी पहिचान क्या होगी ?

प्रश्न ३—जब कि यह प्रत्यक्ष बात है और सब मानते हैं कि जीव जिस योनि में जाता है उसी के अनुसार उस का नाम होता है तब मैं नहीं समझ सकता कि ऐसे वृथा खंडन का नाम करके बहादुरी बतलाने से आप को क्या लाभ है ? हां यह अवश्य है कि आर्यों के समीप आपने द० नं० ति० भा० नाम का खण्डनाभास कर दिया चाहे वह कैसा ही खण्डनहो ।

प्रश्न ४-यह भी तो बतलाइये कि वीर्य शरीर से ही जब तक कि उस में जीव का वास है—निकलता है ? या शरीर छूटने पर केवल जीव से भी निकल सकता है ? और यदि नहीं निकल सकता तो फिर जिस शरीर से यह वीर्य निकला और जिस वीर्य से दूसरा शरीर उत्पन्न हुआ तो कहिये कि क्यों उस शरीर का वही वर्ण न कहा जावे जो वीर्य दाता का है—

स० प्र० में लिखा है कि यदि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से उत्पन्न होता है तो उपादान कारण से उसकी आकृति भी मुख के समान गोल २ होती इस पर पण्डितजी का लेख है कि जब उपादान कारण के समान ही सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है तो फिर निराकार परमेश्वरसे निराकार ही संसार उत्पन्न होना था-यह साकार क्यों ? अब दूसरे स्वामी जी का भा० प्र० पृ० १०७ में प्रत्युत्तर देखिये—यह कहना कैसी अज्ञानता की बात है कि निराकार परमेश्वर होता तो उससे निराकार ही संसार होता क्या कुम्हार मृगमय नहीं है—तो मृणमय पात्र नहीं बना सकता सुवर्णमय, आभूषण बनाने वाला सुनार भी क्या सुवर्णमय होजाता है।

प्रश्न १—कहिये दीनानाथ ! सुनार व वह आभूषण जो बनाया जाता है या कुम्हार व वह पात्र जो बनाता है साकार है या निराकार और जब कि वह दोनों साकार हैं तब साकार से साकार उत्पन्न होना यह तो एक स्वाभाविक बात है आपको इस में यह सिद्ध करना था — कि अमुक वस्तु निराकार से साकार या साकार से निराकार उत्पन्न होती है—वह आपने न करके साकार ही में साकार को घटाने लगे—कहिये अब इसमें अज्ञानता किसकी है ?—

२—जब कि आप किसी प्रकार निराकार से साकार या

साकार से निराकार नहीं बतला सक्ते हैं तो अब इस में कोई सन्देह नहीं है कि निराकार ईश्वर से यह साकार संसार भी उत्पन्न नहीं होसक्ता न हुआ है।

प्रश्न ३—आप कहते हैं कि वह सर्व शक्तिमान् है और बिना हाथ पांव सब कुछ कर सकता है तो अब बतलाइये कि उसे साकार होने में रोकने वाले, आप व आपके गुरु महाराज कौन हैं ? क्या आप उस परमेश्वर के भी परमेश्वर होना चाहते हैं और क्या इसी का नाम सज्ञानता है।

प्रश्न ४—आप यहां यह भी कहते हैं कि वेदों का प्रकाश ऋषियों के हृदय में किया—यह तो आपके मतानुसार है पर यह भी तो बतलाइये कि वह ऋषि कहांसे व किससे उत्पन्न हुए थे और कोई उनकी माता भी है या केवल पिता का पेट फाड़ के निकले थे और यदि पिता का पेट ही फाड़कर निकले थे तो वह उनका पिता फिर भी साकार था या निराकार ?

भा० प्र० पृ० ११० पं० ३ में लिखा है कि जो जिस का स्वाभाविक काम है वह उसके विपरीत नहीं होसक्ता, बस लोग जिस वर्ण में उत्पन्न हुए हैं यदि उस २ पितर वर्ण का काम न करें तो जानना चाहिये कि यह इनका स्वाभाविक कर्म नहीं है स्वाभाविक होता तो उसके विपरीत न करसकते इस लिये जो स्वाभाविक रीति पर प्रधानता से जो जिस कार्य में रत है उसका वही वर्ण समझना चाहिये—धन्य है महाराज आपको धन्य है जरा इस लेख से यह तो सोचिये कि इससे द० न० ति० भा० का खंडन हुआ या स० प्र० का और क्या इस जगह वही कहावत सत्य है कि झूठ की झपेट व बाज की लपेट थोड़ेही समय तक रहती है सदैव नहीं चलती देखिये स० प्र० में पूर्ण प्रकार से वर्ण व्यवस्था केवल

विद्या से मानी है और वही व्यवस्था भा० प्र० में आप ने विश्वामित्रजी की कथापर तप करने से कर दी है और भा० प्र० पृ० ११४ पं० ७ से आप भी विद्या पर ही वर्ण मानते हैं अब इस जगह आप स्वयं इन तीन बातों का कलेवा करके स्वाभाविक कर्म पर आ पड़े कहिये अब किस को सत्य माने स्वामी जी ने तो अपनी रेलवे लैन कुंभीपाक को चलाई थी आपने यह लैन रौरव को खींच दी अब आप के मतानुयायियों की ईश्वर जाने और अब आर्य बिरादरी में आप की देखी जायगी।

—:o:—

निन्दा स्तुति प्रकरण

स० प्र० में लिखा है कि दोषों का दोष कहना स्तुति है और इस के खण्डन में पण्डित जी ने मनु के तीन श्लोकोंको दृष्टान्त देकर लिखा है कि अप्रिय सत्य बोलना भी बुरा है जिसके प्रत्युत्तर में हमारे स्वामी जी महाराज भा० प्र० पृ० ११८ में कहते हैं (सत्यं ब्रूयात्) इत्यादि श्लोक सभ्यतामात्र धर्म का प्रतिपादन करते हैं अर्थात् ऐसा करनेवाले साधारण भलेमानुस कहाते हैं परन्तु यथार्थ यही है कि शत्रु के गणों की प्रशंसा व गुरु के भी दोषों का कथन करना वाह स्वामी जी महाराज दयानन्द जी ने तो कुछ परदा भी रक्खा था आपने तो बिलकुल ही परदा उठा दिया क्यों न हो, अनुयायी हो तो आप ही की तरह का हो।

प्रश्न १—महाराज जी यह तो कहिये कि आप अपने मतानुयायियोंको भलेमानुस बनाना चाहते हैं या बुरा? यदि भलेमानुस बनाना चाहते हैं तो फिर इस यथार्थ मतके खंडन पर क्यों आप ने इतना परिश्रम उठाया है और जो दू-

सरा बनाना चाहते हैं तो मर्जी आपकी है चाहें जैसा बनाइये और गली २ (बस विशेष कहना वृथा है) फिराइये।

प्रश्न २—पण्डित जी ने मनु के दो श्लोक के अध्याय २ श्लोक २०० व २०१ आप के इस यथार्थ पर भी लिखे हैं कहिये तो उनका भी आप ने क्यों खण्डन नहीं किया—और यदि खंडन नहीं हो सकता था तो कुछ तात्पर्य ही निकाल दिया होता परन्तु हां आप को तो विश्वास है कि हमारे समाजी द० न० लि० भा० देखने ही क्यों जावेंगे उन को तो हमारा ही लेख पत्थर की लकीर होगा—

पितृ देवता प्रकरण

स० प्र० में स्वामी जी ने देवता, पितर, ऋषि, सब एक ही प्रकार व एकही अर्थ में घटाये हैं—और पंडित जी ने बहुत से वेद इत्यादि के मन्त्रों से इन सब को पृथक् २ सिद्ध किया है जो यथार्थ में हैं अब इस पर दूसरे स्वामीजी महाराज का उत्तर भा० प्र० पृ० ११९ में देखिये स्वामी जी ने ऋषि देवता, पितर का एक ही अर्थ नहीं किया किन्तु देवता सामान्य विद्वान् पितर माता पिता आदि ज्ञानी बालक ऋषि पढ़ाने वाले यह तीनों भिन्न २ लिखे हैं फिर पं० २६ से देवता विद्वानों ही को कहते हैं यह स्वामी जी ने भी नहीं लिखा किन्तु पितृयज्ञ के अन्तर्गत जो देव ऋषि, पितर, इन तीनों में देव शब्द है—उसका तात्पर्य विद्वान् लोगोंसे है और देव यज्ञ जो होम से किया जाता है उस के देवता तो अग्नि इत्यादि ३३ स्वामी जी ने भी माने हैं—वाह स्वामीजी महाराज क्यों न हो आप भी तो स्वामी जी हैं—

प्रश्न १—पहिले तो यह कहिये कि आपके लेखानुसार यदि भिन्न२ भी मानें तो भी तो देवता, ऋषि, पितर,

मनुष्यमात्र को ही मानें हैं या नहीं? और यह भी तो कहिये कि विद्वान् जिनको देवता माने हैं—और ज्ञानी जिन को पितर माने हैं और पढ़ाने हारे जिनको ऋषि माने हैं। इन तीनों में कितना अन्तर है, और क्या जो विद्वान् होता है, वह अज्ञानी होता है? और पढ़ाने हारे क्या विद्वान् नहीं होते? तो मूर्ख होते हैं? और यदि नहीं होते तो यस सब पण्डित जी के लेखानुसार निस्संदेह एकही अर्थ में घटते हैं अब आपका यह पलास्तर सरासर वृथा है—

प्रश्न २—हमने जहां तक सुना है केवल पवन, अग्नि, देवता इत्यादि तो सुने हैं परन्तु मनुष्य ही देवता, पितर आदि हैं ऐसा शब्द कहीं नहीं सुना क्या आप इसको नहीं बतला सक्ते हैं।

प्रश्न ३—आप ने माता पिता ज्ञानी बालकको पितर लिखे हैं सो तो ठीक है, परन्तु मनु महाराजने पितरोंमें प्रीति चाहने वालों को तिल, यव, पय, मूल, फल, जलसे श्राद्ध लिखा है अब बतलाइये कि यह माता पिता इत्यादि आप के जीवित पितर इन वस्तुओं से शांत रह सकेंगे और षट्रस पदार्थों पर नियत डिगा कर इधर उधर चोरी तो न करते फिरेंगे—

प्रश्न ४—आप ने पहिले कहा कि देवता, सामान्य विद्वान् और फिर कहते हैं कि देवता विद्वानों ही को कहते हैं वह स्वामी जी ने नहीं माना—कहिये इसमें सत्य क्या है? और जो पितर यज्ञ के अन्तर्गत आपने देव ऋषि पितर का तात्पर्य विद्वान् लोगों से लिया है इस का प्रमाण क्याहै और यह तात्पर्य किस वेद मन्त्र में आया है उसको भी तो लिख दीजिये—

प्रश्न ५—स्वामी जीने स० प्र०में (विद्वांसो हि देवाः) यह

लिखा है कि विद्वानों का नाम देवता है और फिर यह भी लिखा है कि सांगोपाङ्ग चारों वेद पढ़ने वालों को ब्रह्मा व जो उससे न्यून हो उसको देवता कहते हैं अब कहिये इस लेख से आपका तात्पर्य कहां जाता है! और क्या स्वामी दयानन्द जी में भी आप के समान बुद्धि न थी! कि वही इतना ब्यौरा लिख देते और कह देते कि श्राद्ध के देवता मनुष्य व हवनके देवता वनस्पति इत्यादि हैं "भूतानां प्रथमो ब्रह्माह जज्ञे,, यह अथर्व का लेख भी देखा है कि सब से पहिले ब्रह्मा जी हुए—

प्रश्न ६—महाराज जी आप हर विषय व हर पृष्ठ में तात्पर्य निकालते हैं यह क्यों? क्या आप के सन्मुख प्राचीन विद्वान् मूर्ख थे! और उनको सत्यासत्य लिखने में आप का कोई भय था जो तात्पर्य निकालने का भार आपके सिर छोड़ गये मेरी समझ में तो सिवाय इस तात्पर्य का सहारा लिये आप द० न० ति० भा०का एक बालभर भी खण्डन नहीं कर सकते? इसी से इस तात्पर्य को आपने अपना तकिया कलाम बना रक्खा है।

द० न० ति० भा० में नि० अ० ७ या १ खण्ड ५ दैव० का का अर्थ किया है कि देवताओं का प्रभाव यह है कि आत्मा ही देवताओं का अश्व, रथ, आयुध इत्यादि है और सबही उपकरण देव देव का आत्मारूप है इसका स्वामी तुलसीराम जी इस प्रकार अर्थ बदलते हैं कि वायु आदि भौतिक देवताओं का परमात्मा ही रथ घोड़ा, आयुध बाण आदि सब कुछ हैं अर्थात् परमात्मा रूप सवारी हो में यह वायु आदि चलते फिरते हैं।

प्रश्न १—क्यों स्वामी जी महाराज आपने तो यह अर्थ बदल कर ईश्वर को बिलकुल ही वे किराये का खच्चर बना

डाला कि जो चाहे उस पर सवार होगया पर कहिये तो कि आप ने भी कभी इस सवारी का मजा पाया है या नहीं ?

प्रश्न २—आप कहते हैं कि परमात्मारूप सवारीपर यह वायु आदि देवता चलते हैं और आपही के भा० प्र० पृ०११९ पं० २९ के लेखानुसार अग्नि, वायु, जल, मेघ, सूर्य, चन्द्र वनस्पति इत्यादि ३३ देवता हैं जो प्रत्यक्ष साकार हैं अब बतलाइये कि जब ईश्वर निराकार है तब उसपर इन साकार देवताओं की सवारी कैसे होती है—

भा० प्र० पृ० १२१ (कुतोयमग्निः कठो० पं० ५ । १५) का अर्थ है कि न परमेश्वर के सामने सूर्य का प्रकाश कुछ वस्तु है न चन्द्रमा न तारे फिर इस अग्नि का तो कहनाही क्या है इत्यादि—महाराज जी यह तो ठीक हुआ और यथार्थ है परन्तु वह तो कहिये कि यह सूर्य इत्यादि ऊपर के श्लोकानुसार उस परमेश्वर पर सवारी कैसे करते होंगे ?

स० प्र० में लिखा है कि जो सांगोपांग चारों वेदके जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा है और फिर आप वेदों के उपांग ऋषिकृत और वेदों के पश्चात् बने बतलाते हैं इस पर पण्डित जी के इतने प्रश्न हैं—

प्रश्न १—जिस समय तक वेदों के उपांग नहीं बने थे केवल संहिता मात्र वेद था तो उस समय ब्रह्मा संज्ञा ही न होती थी फिर अथर्वमें कैसे लिखाहै कि सृष्टिमें सबसे पहिले ब्रह्मा हुए बिना उपांग इन्हें ब्रह्मा किसने बना दिया।

प्रश्न २—जो आपही का नियम होता तो उपांग बनाने वालों का नाम महाब्रह्मा होता क्योंकि पढ़ने वालों से ग्रन्थ कर्ता बड़े होते हैं—

प्रश्न ३—जो सांग वेद जानने से ही ब्रह्मा कहावे तो रावण को ब्रह्मा क्यों नहीं कहते—

प्रश्न ४—वशिष्ठ गौतमादि सभी सांग वेद के जानने वाले थे यह ब्रह्मा क्यों न हुए।

अब इन सबका भा० प्र० पृ० १२५ में प्रत्युत्तर यह है तो क्या आप (विद्वा० सोहि देवा०) इस शतपथ को नहीं मानते ब्रह्मा वही पुरुष होसकता है जो चारों वेद जानता हो क्योंकि यज्ञ में जब किसी विद्वान् का ब्रह्मा वरण किया जाता है। तो उसे चारों वेद जानने की आवश्यकता पड़ती है और इसी बात को आपने पृ० १२८ तक सिद्ध किया है इसी पर कुछ प्रश्न मेरे भी हैं।

प्रश्न १—क्या स० प्र० में स्वामी जी के लेख का यही आशय है जैसा कि आपने घटाया है और यदि यही है तो उनको क्या ऐसाही लिख देनेमें कुछ लज्जा आती थी।

प्रश्न २—क्या पंडित जी महाराज के प्रश्नों का यही उत्तर है—जो आपने दिया और क्या वह ब्रह्मा जो स्वामी जी लिखते हैं, और वह ब्रह्मा जो यज्ञ में वरण किया जाता है कभी एक होसक्ते हैं—

प्रश्न ३-क्या इस आप के उत्तरसे यह सिद्ध नहीं होता कि जब आप स्वामी जी के लेखानुसार सांग वेद जानने वालेको ब्रह्मा सिद्ध न कर सके तब यज्ञ के ब्रह्मा वरण पर ले दौड़े नहीं तो स्वामीजी का तो प्रत्यक्ष ही लेख है कि सांग वेद जाननेवालेको ब्रह्मा कहते हैं, और आप कहते हैं कि सांग वेद का जाननेवाला यज्ञ में ब्रह्मा वरण किया जाता है—कहिये इसमें उसमें कितना अन्तर है—महाराजजी यह वरण ब्रह्मा थोड़ी ही देर को रहता है और स्वामीजी के मतानुसार सांग वेद का जाननेवाला सदैव को ब्रह्मा होता है जरा फिर भी तो शोचके पढ़ियेगा—

प्रश्न ४—आप कहते हैं कि यज्ञके ब्रह्मा वरणको चारों

वेद जानने की आवश्यकता होती है और वही ब्रह्मा वरण होता है और आज कल समाजियों में ही यज्ञ की चर्चा विशेष रहती है अब बतलाइये तो कि आपके यहां कौन २ व कितने महाशय सांग चारों वेद के जानने वाले हैं जिन को आप ब्रह्मा वरण करते हैं और यदि नहीं हैं तो फिर आप के इस लेख को क्या कहना चाहिये—क्या पण्डित भीमसेन शर्मा का वह आर्य सिद्धांत अङ्क नहीं देखा जिसमें समाजियों के वेद जानने की उन्होंने पोल खोली है—

श्राद्ध प्रकरण

भा० प्र० पृ० १२८ से श्राद्ध प्रकरण है जिस के प्रथम स्वामी जी का यह लेख है स्मरण रहै कि स्वामीजी वा आर्य समाज से जो कुछ श्राद्ध विषय में विवाद है वह यह है कि ब्राह्मणादि के भोजन कराने से मृत पितरोंकी तृप्ति होसक्ती है वा नहीं ? स्वामीजी का पक्ष है कि नहीं होसक्ती है और पौराणिक हिन्दू भाइयों का पक्ष है कि पहुंचता है इत्यादि

इस पर मेरे प्रश्न—

प्रश्न १—आपने लिखा है कि स्वामीजी व आर्य समाजमें जो कुछ विवाद है वह यह है-मैं नहीं समझ सक्ता कि वह कौन स्वामीजी हैं ? जिनसे विवाद है या यह लिखना आप की भूल है और यदि भूल है तो कहिये जिस विषय में श्री गणेशजी पर ही भूल हुई है वह कहांतक शुद्ध होसकता है।

प्रश्न २—इस लेख में केवल आपने भोजन कराने हो पर विवाद लिखा है, अब बतलाइये कि केवल ब्राह्मणादि को भोजन ही न कराना चाहिये या श्राद्ध भी न होना चाहिये

प्रश्न ३—प० भीमसेन शर्मा जी आप के आर्य समाजी रह चुके हैं या नहीं ? और यदि रह चुके हैं तो फिर आप उन्हींसे जिन्होंने आर्य्यसामाजिक अवस्थामें मृत पि-

तर श्राद्ध माना और किया है क्यों—इसका निर्णय नहीं कर लेते और क्या आर्यसिद्धांत मासिकअङ्क मार्गशीर्ष व पौषसं० ५७ का आपके दृष्टिगोचर नहीं हुआ—और यदि हुआ है तो फिर उनके लेखानुसार आप उनसे शास्त्रार्थ करने में क्यों हिचकते हैं? यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि जिस झगड़े का निबटेरा हमारे घरही में होसक्ता है उसके वास्ते हम दूसरे पक्षवालों से प्रश्न करें आपकी मिथ्यालीला समझ कर ही पं० भीमसेन जी ने समाज छोड़ दिया।

प्रश्न ४—आप ने अपने भा० प्र० के इसी श्राद्ध प्रकरणमें बहुतेरे मन्त्रों के अर्थ में यह लिखा है कि यह हवन हमारे मृत पूर्वजों के लिये फलदायक हो, अब आपही बतलाइये कि आपके मृत पूर्वज क्या इस आपके हवन की गन्धि लेने को जीते बैठे हैं और यदि नहीं बैठे हैं-और उनका उनके कर्मानुसार किसी योनि में जन्म हो चुका है तो फिर यह हवन आपका उनके वास्ते कैसे फलदायक हो सक्ता है? और यदि आपका हवन उनको फलदायक हो सक्ता है तो फिर बतलाइये कि हमारा पिंडदान इत्यादि क्यों हमारे मृत पूर्वजों को फलदायक न होगा? अब यदि फिर आप कहैं कि हमारा सिद्धांत ऐसा नहीं है—तो फिर विशेष बतलाने व दिखलाने की क्या आवश्यकता है? केवल पृ० १३९ में अथर्व १८—२—४९ का ही अपना किया हुआ अर्थ देख कर यदि यथार्थ है तो कुछ लज्जित होजाइयेगा, यदि फिर आप कहैं कि हवन की सुगन्धि वायुद्वारा उनको पहुंच सकती है—तो मैं फिर पूछता हूं कि क्या हमारे पिंडदान की और उस भोजन की सुगन्धि जो ब्राह्मणों के लिये बनवाया गया है-उसी वायुद्वारा हमारे पितरों को न पहुंचेगी? अब इसके पश्चात् स्वामी जी महाराज पृ० १२९से १४४ तक उन वेदमन्त्रों

के अर्थ बदलने व खंडन करने में कटिबद्ध हुए हैं कि जिनको पण्डित जीने श्राद्ध की पुष्टतामें लिखा है परन्तु यह अर्थ को बदल कर खण्डन कैसा है—यह बुद्धिमानों को स्वयं ही यदि वह सुचित होकर पढ़ें व विचारें तो पूर्ण प्रकारसे विदित हो सक्ता है कि सत्य क्या है? और मैं नहीं समझताकि क्यों स्वामी जी महाराज ने वृथा इतना श्रम उठाकर इस पुस्तक को बढ़ा दिया स्वामी जी महाराज जो हर मन्त्र के अर्थ बदलते हैं उनके अवलोकन से मुझ अल्पज्ञ के जी में तो बहुत कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं परन्तु फिर सोचता हूं कि इन सब मन्त्रों के अर्थ पर पूरे पूरे प्रश्न करने से इस मेरी छोटीसी पुस्तक के भी बहुत बढ़ जाने की सम्भावना है इस कारण इस कहावत का सहारा लेकर (कि अक्लमन्द को इशारा बस है) (या हंडा भर भात में केवल एक सीत देख कर परीक्षा कर ली जाती है) पूरे पूरे मृतक श्राद्ध में प्रश्न न कर के किसी २ मन्त्रपर मेरे यह प्रश्न हैं, बुद्धिमान् लोग इतने ही पर सत्यासत्य का निर्णय कर लेंगे।

द० नं० लि० भा० में (त्वयाहिनः) एक मन्त्रका अर्थ किया है कि संशोधक सोम हमारे बुद्धिमान् पूर्व पितरों ने तेरे द्वारा यज्ञ आदि कर्मों को किया इस कारण प्रार्थना करता हूं कि इस कार्यमें युक्त वायु आदि उपद्रव से रहित तुम उपद्रव करनेवालों को हटाओ और वीर तथा सूर्यरूप पितरों से युक्त तुम हमारे धन दाता हूजिये, इसका स्वामीजीने भा० प्र० पृ० १३३ पं० २३ से यह अन्वय व अर्थ किया है कि हे पवित्रस्वरूप पवित्र कर्म कर्ता और पवित्र करने हारे ऐश्वर्य युक्त सन्तान तेरे साथ हमारे पूर्वज बुद्धिमान् पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्म युक्त कर्मों को करने वाले हुए, उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें हिंसा कर्म रहित धर्म का सेवन

करते हुए सन्तान तू वीर पुरुष और घोड़े आदि के साथ हमारे शत्रुओं की परिधि अर्थात् जिनमें चारों ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों को आच्छादन कर और हमारे मध्य में धनवान हूजिये—

प्रश्न १—आपने इस अर्थ करने में प्रथम हे (पवमान) यह अन्वय करके इसका भावार्थ किया है कि पवित्र स्वरूप पवित्र कर्म कर्ता और पवित्र करने हारे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान अब बतलाइये तो कि दूसरों के अर्थ करने में तो आप बहुधा अक्षरार्थ की पकड़ पकड़ते हैं फिर आपने यहां (पवमान) शब्द का किन किन अक्षरों से इतना लम्बा चौड़ा अर्थ निकाला है?

प्रश्न २—आप कहते हैं कि हे पवित्र सन्तान तेरे साथ हमारे पूर्वज पिता आदि ज्ञानी लोग जो धर्म युक्त कर्म करने वाले हुए उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें—स्वामी जी महाराज यह बात मेरी समझ में नहीं आती-कि आपके पूर्वज पिता आदि ज्ञानी आपकी सन्तान के साथ जब धर्म यक्त कर्म करते थे तब क्या आप घर पर नहीं थे जो अपनी सन्तान से ऐसा कहते हैं और क्या आप की सन्तान आप को पिता आदि की सेवा करने से रोकती है—और क्या आप के पिता आदि ज्ञानी आप को कुछ बुरा या पाखण्डी इत्यादि समझते थे, कि जो आपकी मौजूदगीमें आपके साथ धर्मयुक्त कर्म न करके आप की नादान सन्तान के साथ करने बैठे—

प्रश्न ३-फिर आप कहते हैं कि हिंसा कर्म रहित धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू वीर पुरुष और घोड़े आदि के साथ हमारे शत्रुओं का परिधि के मार्ग को आच्छादन कर—क्यों जी स्वामी जी महाराज आप तो बड़े ही कठोर चित्त

मालूम होते हैं कि अपने जीते जी अपने पुत्र को शत्रु के मार्ग रोकने की आज्ञा देते हैं, कहिये तो कि क्या आप अपने शत्रुओं के मार्ग रोकने की कोई शक्ति नहीं रखते हैं और जो सन्तान को ऐसी कठोर आज्ञा दी जाती है।

प्रश्न ४—आपने जो इसी मन्त्र का भावार्थ किया है कि मनुष्य लोग अपने धार्मिक पितादि का अनुकरण कर और अपने शत्रुओं को निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हो सुखी होवे—सो महाराज जी यह भावार्थ तो आप के अक्षरार्थ से विलकुल मिलान नहीं खाता यह क्यों और कैसा भावार्थ है—सिवाय इसके आप कहते हैं कि अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हो सुखी होवे—सो यह क्या बात है? सेना तो सिवाय राजा के किसी के पास नहीं रहती—फिर हर मनुष्य के वास्ते यह क्यों कहा गया

फिर भा० प्र० पृ० १३६ में आप ने (पुनन्तु मा पितरः) का अर्थ किया है कि सोम के योग्य पितर पूर्ण आयु के दाता पवित्रता से मुझे शुद्ध करो, पितामह मुझे पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्ण आयु के दाता पवित्रता से मुझे शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करूं—

प्रश्न १—अब बतलाइये कि क्या आप के जीवित पितर आयु को बढ़ा सकते हैं जो उनसे ऐसी विनय की जाती है और यदि बढ़ा सकते हैं तो फिर आर्यों में किसी की मृत्यु न होना चाहिये क्योंकि अपनी सन्तान की कभी कोई मृत्यु नहीं चाहता है; और क्या स्वामीजी के पितामह इत्यादि ने यह विनय न की होगी जो वह काल के कलेवा होगये और जो इस पर यदि आप हमीं से प्रश्न करें कि जब ऐसा है तब तुम्हारे मृत पितर क्यों तुम्हारी आयु नहीं ब-

ढ़ादेते तो महाराज जी हमारे मृत पितर परोक्ष हैं और आपके प्रत्यक्ष हैं और यह आप भी कह सकते हैं कि परोक्ष व प्रत्यक्ष के प्रेम में सदा अन्तर रहता है विनय करना हमारा काम है यदि वह न माने तो हम उनके साथ कुछ भी नहीं कर सकते और आप जब कि आपके पितर सन्मुख हैं सब कुछ कर सकते हैं, और जब तीन पीढ़ी तक का पवित्र करना लिखतेहो और श्राद्ध सब करें ऐसा मानते हो तो जिन २ के बाप दादा न होवें वे करें या नहीं और जीवितका श्राद्ध है तो प्रतिनिधि की आवश्यकता क्या है सोमपा किस का प्रतिनिधि है।

फिर इसी पृ० में आप ने जो दूसरे मन्त्र का अर्थ किया है और जिसके अन्तिम अर्थ में आपने लिखा है कि पिता लोग गर्भ का आधान करें-और पुत्र को उत्पन्न करें-कहिये तो आर्यों में पिता को भी गर्भाधान हो सकता है? फिर पृ० १३७ में आप ने अथर्व १८ । ४ । ५७ का अर्थ किया है कि मृतक के फूकते समय घी की धारा जीवितोंकी रक्षा करतीहै व शव को सड़ने से रोकती है अब कहिये कि क्या आप के यहां मुर्दा अधजला छोड़ाजाता है जो घी की धारा उस को सड़ने नहीं देती और यदि छोड़ा जाता है तो फिर क्या घी की धारा से वह सड़ने से बच सक्ता है, कभी नहीं अब इस पर यदि आप कहें कि घी की धारा से वह पूरा जल जाता है सड़ने के वास्ते नहीं बनता है-तो भी यह लेख आप का व्यर्थ है क्योंकि वह धारा शव के जलानेमें सहायता देती है न कि सड़ाने से बचाती है—

फिर पृ० १३९ में १८ । २ । ४८ का आप ने अर्थ किया है कि जो हमारे बापके बाप हैं अतएव जो हमारे बाबा हैं जो कि इस बड़ आकाश में प्रवेश कर गये हैं जो कि पृथ्वी को

व आकाश को छाय रहे हैं उन मृत शरीरों के लिये हम आहुति करते हैं अब कहिये तो कि यह आहुति मृतक पितरों की है या जीवितोंकी—और क्या अबभी मृतक श्राद्धको मना ही करते जाओगे और फिर जो इसी मन्त्रके भावार्थमें आपने कहा है कि अन्त्येष्टि श्रद्धापूर्वक करनेसे मृतपूर्वज लोगों के शरीरावयव वायु आदि में हैं वह बिगड़ते नहीं किन्तु सुधर कर प्राणियों को सुख देते हैं (यहां आपके अर्थ ठीक मानें या दयानन्द बाबा के)

प्रश्न १—अब बतलाइये कि जब आप अपने मृत पिताको प्रथम ही जला चुके हैं, तो अब उन के वह कौनसे अवयवहैं जो कि वायु में पड़े हैं और क्या उस घी की धाराने उनकी सहायता नहींकी? और वह अवयव अब आपको क्या सुखदेतेहैं

प्रश्न २—क्या वह अवयव वायु आदि में पड़े कभी आप ने देखे हैं यदि देखे हैं तो बतलाइये कि वायु उनको किस जगह ठहराये है और जो नहीं देखे तो स० प्र० के विरुद्ध इस असम्भव बातका आपको विश्वास कैसे हुआ? स्वामीजी ने स० प्र० में सोमसद इत्यादि ग्यारह प्रकार के पितर लिखे हैं और वह सम्पूर्ण जीवितों पर घटाये हैं, जैसा कि जो जानने के योग्य वस्तुओंके रक्षक और घृत दुग्धादि खानेपीनेवालेहों वे (आज्यपा) कहलाते हैं, और इस पर पण्डितजी महाराज ने द० म० ति० भा० के ग्यारह पृष्ठों में इसकी पूरी २ समीक्षा करके अच्छे प्रकार मृत पितर श्राद्ध सिद्ध कर दिया है और दयानन्द जी की पितर व्याख्यानुसार सम्पूर्ण संसारही को स्वामी दयानन्द जी और उनके मतानुयायियों का जीवित पितर सिद्ध कर दिखाया है जिन ग्यारह पृ० के उत्तरमें स्वामी जी महाराज यह कहते हैं कि क्या धर्मसभा के लोग अङ्गरेज भोज नहीं करते, और क्या वृथा मृत पितरोंका नाम

लेकर श्राद्ध में हकीमजी, बाबूजी, पुजारी, रसोइया नहीं जिमाये जाते—

इसपर मेरे प्रश्न—

प्रश्न १—क्यों स्वामीजी महाराज क्या आपने इस ६ पंक्ति के उत्तर देनेसेही ग्यारह पृष्ठोंका उत्तर देना समझ लिया और यह भी तो कहिये कि जो मिश्र जी ने दयानन्दजी की व्याख्यानुसार सम्पूर्ण संसार ही को दयानन्दजी का पितर सिद्ध कर दिया है उस का आप ने क्या उत्तर दिया व क्या समाधान किया है—

प्रश्न २—स० प्र० के लेखानुसार जो दूध घृतादि के खाने पीने वाले हैं उनको स्वामीजी ने (आज्यपा) नाम पितर लिखा है कहिये अब इस लेखसे सम्पूर्ण सृष्टिके वह जीवधारी जो दुग्ध पीते अथवा घृत खाते हैं आपके पितर हो सक्ते हैं या नहीं ? और इतर जीवधारी तो क्या ? मेरी समझमें तो आप के पुत्र व स्त्री भी इस हिसावसे आपके पितर होजावेंगे क्योंकि वह भी दूध पीते व घृत खाते हैं बतलाइये यह समझ मेरी यथार्थ है या भूल है ? बल्कि चार दिनका बालक ठेठ पितर होगा कारण कि यह दूधाधारी है—

द० नं० ति० भा० का यथार्थ लेख यह है कि पितरों के पिंडदान की वेदी के आगे उल्मुक धरे इसकी भा० प्र० पृ० १४५ में नकल की है कि पितरोंके आगे जलती लकड़ी धरना लिखा है और इसी पर आप का यह प्रत्युत्तर है कि आपके मतानुसार मृतकों के श्राद्ध निमित्त भी तो जीते ब्राह्मण जिमाये जाते हैं फिर आप को भी तो उनके सामने धूनी सुलगाना पड़ेगी (वाह क्या ही उत्तम उत्तर है)

प्रश्न १—स्वामी जी महाराज क्या द० न० ति भा० का ऐसा ही लेख है जैसा आपने लिखा है, क्या आप को भूख

तो नहीं लगी थी जो पिंडदान की वेदीका कलेवा कर गये

प्रश्न २—पण्डित जी ने मृत पितरों के पिंडों की वेदी के आगे उल्मुक धरने को लिखा है फिर आप ब्राह्मणों के सामने कैसे धूनी लगवाते हैं यह तो स० प्र० के प्रमाणानुसार आपको अपने जीवित पितरोंके सामने जलाना चाहिये।

प्रश्न ३—आपने जो उल्मुक से दीपक का तात्पर्य निकाला है यह किसी प्रकार आप अपने तात्पर्य को तिलांजली देकर सिद्ध भी कर सकते हैं और फिर इस प्रमाण का अर्थ करने को क्यों आप ने छोड़ दिया ? कुछ भी तो लज्जा को जगह दीजियेगा (टिहरीमें इस अर्थ पर कैसा हास्य हुआ था)

पण्डित जी ने वा० सी० रामायणके मनु के बहुत से प्रमाण देकर भी मृतपितर श्राद्ध सिद्ध किया है, जिसके उत्तर में स्वामी जी महाराज का केवल इतना लेख है (जिसका उत्तर रामा० वा० व मनु के प्रक्षेप में स्वयं आगया)

प्रश्न १—कहिये महाराज जी इतने ही लेख पर कैसे समझा जावे कि आप इसका भी खण्डन कर चुके क्या इन प्रमाणों का खण्डन लिखने को भा० प्र० में जगह नहीं रही थी ? या यह समझें कि जब इस के खण्डन के वास्ते कोई बश न चला तब इसी तरह टालमटोल कर दिया जिस से समाजी तो समझ ही लेंगे कि खण्डन हो चुका—

और अब यहां से नियोग प्रकरण तक तो बिल्कुल ही ले भागू खण्डन किया है जिसपर मेरा भी प्रश्न करना व्यर्थ है क्योंकि भागतेका पीछा करना किसी प्रकार भी उचित नहींहै।

नियोग प्रकरण

भा० प्र० पृ० १४९ से नियोग प्रकरण है जिसमें स्वामी जी महाराज ने पृ० १५५ में यह लिखा है कि कुन्तीने शास्त्र-

थे करके नियोग किया और वह पांडुपुत्र कहलाये व उनके दायभागी हुए—१४९ में (या पत्या०) इसका अर्थ बिना देखे मिश्र जी पर मिथ्या दोष लगानेसे आपको लजाना चाहिये मृतपति को प्राप्त करना कहां लिखा है बताओ तो स्वामी होकर मिथ्या कहते हो।

प्रश्न १—स्वामीजी महाराज! प्रथम यह तो कहिये कि यह नियोग किसके साथ हुआ अर्थात् मनुष्योंसे या वायु इत्यादि से जिनको आपभी देवता मानतेहैं और यह भीम इत्यादि कितनी वार के स्त्री प्रसंग से हुए थे और यह वायु इत्यादि जिनसे नियोग हुआ था मनुष्य द्वारा बुलवाये गये थे या मन्त्र द्वारा इनका आवाहन हुआ था अब यदि वायुइत्यादि आपके माननीय देवता थे तो बतलाइये कि क्या उस समय इस आर्यावर्तमें कोई मनुष्य नहीं थे जो कुन्तीजी ने देवताओं से नियोग किया और जब कि उन्होंने देवताओं से नियोग कियो था तो क्या अब आप उन देवताओंको आवाहन द्वारा नहीं बुला सकते जो जबरदस्ती मनुष्यों से नियोग की सम्मति देकर दुनियां भरकी स्त्रियोंको व्यभिचारिणी बनाने पर कटिबद्ध हुए हैं और क्या जैसा वायु इत्यादि के एकवार के स्पर्श मात्रसे कुन्तीजी को गर्भ हो गया था— ऐसा आप भी एकवार के प्रसंग से गर्भ स्थापित करा सकते हैं और यदि नहीं करा सकते तो फिर बतलाइयेगा कि उन की समता क्यों?

प्रश्न २—इसको तो आपभी अवश्यही मानेंगे कि कुन्तीजी की बहू द्रौपदी जी के युधिष्ठिर, अर्जुन इत्यादि पांचपति थे और वह वारी वारी से पांचों के समीप जातीथी, और जब जिसके पास रहती थी उसीसे पतिभाव मानकर शेष भाइयों से यथायोग्य नतेती पालन करतीथीं—अब बतलाइये कि जब

कुन्तीजी के किये अनुसार आप नियोगको उत्तम समझते हैं तो द्रोपदीजी के कर्त्तव्य अनुसार सम्पूर्ण स्त्रियों को पांच २ पति क्यों न कराइयेगा ? क्योंकि कुन्ती व द्रोपदी एकही कुल व एकही घरकी हैं व यह कथा आप के भी माननीय ग्रन्थ महाभारत की है, और यदि पांच पांच पति कराने से कुछ लज्जा आती है तो फिर नियोग के वास्ते क्यों निर्लज्ज बनते हो हमारे यहां तो द्रोपदी अग्निकुंड में प्रकट हो पूर्व से शापित है मानुषी सृष्टि से भिन्न है पूर्व की देवता है इससे मानुषी नियम से भिन्न है।

प्रश्न ३—स० प्र० का प्रचार व नियोग की चर्चा होते एक समय व्यतीत होचुका परन्तु आजतक किसी इस पन्थ की स्त्री का खुल्लम खुल्ला नियोग करके सन्तान उत्पन्न करके नहीं देखा जाता यह क्या ? कहके बतलाने की अपेक्षा तो करना दिखलाना मेरी समझ में आप के लेख को विशेष पुष्टता पहुंचावेगा।

प्रश्न ४—जब कि नियोग केवल सन्तान उत्पत्ति को है और यदि एक वार के स्त्री प्रसंग से गर्भ न रहकर दुवारा, तिवारा संभोग की नौवत पहुंची और इतने पर भी गर्भ न रहा तो अब कहिये कि इसको व्यभिचार कहोगे या संतान उत्पत्ति का नियोग कहोगे।

अब इसके आगे कुछ और जलसा देखियेगा कि जिसकी पूरी पूरी वहार तो स० प्र० का पूरा लेख व उस पर द० न० ति० भा० पूरा खण्डन व उस पर तुलसीराम जी का पूरा प्रत्युत्तर लिखने से आती, परन्तु ऐसा करने व लिखने से इस छोटी सी पुस्तक के भी भा० प्र० की परदादी बन जाने की निश्चय सम्भावना है इस कारण किसी और पुस्तक स० प्र० इत्यादि का पूरा लेख न लिखकर केवल भा० प्र० के उतनेही

लेख पर जिनमें मुझे शंका है और जिनका समाधान कराना योग्य समझता हूं, कुछ प्रश्न लिखता हूं, और बुद्धिमानों से सविनय निवेदन है कि यदि उनको कुछ भ्रम या सन्देह हो तो वह कृपाकर स० प्र० व द० न० ति० भा० व भा० प्र० का निस्सन्देह मिलान कर सक्ते हैं कि जिसमें उनको सत्यासत्य का पूरा २ निश्चय भी होजावेगा।

भा० प्र० पृष्ठ १५२ पं० ३ में एक श्लोक का अर्थ करके लिखा है शेष सन्तान का नाम है परमात्मन् अन्य से उत्पन्न सन्तान नहीं होती—

प्रश्न १—अब बतलाइये कि जब आपके अर्थानुसार ही अन्य से उत्पन्न हुई सन्तान अपनी सन्तान नहीं होती तब फिर नियोगी सन्तान कैसे अपनी हो सकती है, और जो आपने इस के तात्पर्य पं० ७ में यह लिखा है कि अन्य श-ब्द से यहां उसका ग्रहण है कि जो विवाह व नियोगादि से विधिपूर्वक अपनाया नहीं गया, तो अब मैं पूछताहूं कि इस का प्रमाण क्या है? कि यहां अन्य शब्दका यह अर्थहै और दूसरी जगह दूसरा होगा (अब तो शायद किसी जगह य-थार्थसे आपको अर्थ सिद्ध न होगा तो क्या आप स्त्री का भी भगिनी अर्थ करके लिखदेंगे कि यहां स्त्री का तात्पर्य विवा-हिता स्त्री से नहीं किन्तु भगिनी से है)

प्रश्न २—आपने अपने तात्पर्य पं० ९ में लिखा है कि अ-न्यथा निज पति से शरीर मात्र के भेद से अन्य मानोगे तो उसकी उत्पादित सन्तान भी अपनी न होगी—यह क्यों न होगी? और इसके न होने का कारण क्या है? और क्या यहां शरीर मात्रका भेद स्त्री से तो नहीं लिया जाता है व यदि स्त्री से ही लियाजाता है तो फिर यह अच्छा होगा कि और कोई उपाय ऐसा निकाल लिया जावे कि जिस में

पुरुष अपने ही से—भोग करके आपही सन्तान उत्पन्न करले बस सब झगड़ा पाक हुआ भा० प्र० पृ०१५३ से आप एक मन्त्र और निरुक्त का पहिले यह अन्वयार्थ करते हैं—

भले प्रकार सुखदायक भी पराया धन न लेना चाहिये, और जो अन्य के पेट से उत्पन्न हुआ है उसे मनसे भी नहीं मानना कि यह मेरा पुत्र है, क्योंकि फिर वह उसी घर को चला जाता है जहां से आया था ओकस् घरका नाम है इस लिये बलवान् शत्रुओं को दबाने वाला नया उत्पन्न हमें प्राप्त हो वही पुत्र है अब इसका भावार्थ सुनिये—

इससे यह पाया जाता है कि कोई स्त्री मनसे भी अन्य के पेट से उत्पन्न पुत्र को अपना पुत्र न माने किन्तु जहां तक हो सके विवाह या नियोग से अपनी बुद्धि से पुत्रोत्पादन करके उसे पुत्र माने,,—

प्रश्न १—बतलाओ यह भावार्थ किन किन शब्दोंसे निकाला गया है ? और जब कि यह भावार्थ यथार्थ है तब (इससे यह पायाजाता है)इस लिखनेकी क्या आवश्यकता थी

प्रश्न २—यहांपर स्त्री आपने किसी शब्दका अर्थ किया है या अपनी तरफसे मिलाया है और मिलाया है तो क्यों ?

प्रश्न ३—आपने अन्वयार्थ में कहा है कि अन्यके पेटसे उत्पन्न हुए पुत्रको मनसे भी न मानना कि यह मेरा पुत्र है क्योंकि वह उसी घरको चला जायगा जहां से आया है महाराज जी ! इस लेख से तो मुझे बड़ाही संदेह होता है कि क्या वह पुत्र अपनी मा के पेट में चला जायगा या क्या ? क्योंकि जैसे दो स्त्रियां सौतें, सौतें हैं और उनमें से एक के पुत्र है, तो अब यह पुत्र तो किसी अवस्था में भी घर छोड़ के नहीं जासका, उनके वास्ते यह लेख कैसे यथार्थ हो सका है ? और क्या यहां भी सौत के पुत्र को अपना न मान-

कर नियोग रूपी व्यभिचार से ही पुत्र उत्पन्न करनेकी आवश्यकता होगी—

प्रश्न ४-इस भावार्थ में भी आप नियोग को बीचमें लाये हैं अब बतलाइये तो कि यहां भी यह नियोग किस आसमान से टपकाया है—

भा० प्र० पृ० १५४ में पण्डितजी के किये हुए एक मन्त्रके अर्थ को बदलकर स्वामी जी ने यह अन्वयार्थ किया है कि सौभाग्य दाता वीर्य से युक्त पुरुष ! तू इस स्त्री को सुन्दर पुत्रवती और सौभाग्यवती कर, इस स्त्रीमें दश पुत्रोंका आधान कर (अब स्त्री से कहते हैं कि) ग्यारहवां पतिकर और इसके पश्चात् कुछ मामूली खण्डन मंडन करके पृ० २२में फिर लिखा है कि यह ठीक है कि यह मन्त्र विवाह समय का है और विवाहित स्त्री पुरुष को परमेश्वर की आज्ञानुसार दश से अधिक सन्तानों का आधान न करना चाहिये और स्त्री या पुरुष की मृत्यु आदि अकस्मात् कारण उपस्थित हो तो पुरुष व स्त्री को ११ से अधिक पुनर्नियोग न करना चाहिये

फिर अथर्व के तीन मन्त्रों का कुछ २ अंश लिखकर पृ० १५५ में आप लिखते हैं कि क्या इन मन्त्रों से भी दूसरे पति का वर्णन द्वितीय पति की सलोकता और दश पतियों के विधान को खेंचातानीमें डाल सकियेगा और ग्यारहवां पति दोनों प्रकार से गिना जा सकता है अर्थात् दश पुत्र ग्यारहवां पति व दश पतियों के पीछे ११ वां पति—

प्रश्न १—(अब स्त्री से कहते हैं) पहिले यह बतलाइये यह आप ने अपने मन से मिला दिया या इस मन्त्र के किसी शब्दों से निकलता है—और जो किसी शब्दों से निकलता है तो बतलाइये कि वह कौन कौन शब्द हैं ? और यदि मन से मिलाया है तो क्यों मिलाया ?

प्रश्न २—जब आपके अर्थानुसार स्वयं ही यह निकलता है कि हे सौभाग्यदाता। तू इस स्त्री में दशपुत्र का आधान कर तब बतलाइये कि यह ग्यारह पति नियोग करके क्यों बतलाये जाते हैं और जो आपने पीछे यह लिखा है कि १० पतियों के पीछे ग्यारहवां पति भी हो सकता है तो बस अब यहां ११ पति ही होगये सन्तान विलकुलही नहीं रही फिर सन्तान के वास्ते नियोग की आड़ वृथा है चाहे पुत्र की आकांक्षा हो या न हो। इस वेदमन्त्र वा आपके अर्थानुसार ११ पति अवश्य ही होना चाहिये।

प्रश्न ३—आपने जो यह लिखा है (कि स्त्री या पुरुष के मृत्यु आदि अकस्मात् कारण उपस्थित हों तो पुरुष या स्त्री को ११ से अधिक पुनर्नियोग न करना चाहिये) अब आप अपने ही किये अन्वयार्थ से बतलाइये कि यह बात किन शब्दों व उनके अर्थ से निकलती है, या किसी भैंस या भैंसा के मुह से निकल पड़ी है ?

प्रश्न ४—आपने जो पीछे तीन वेद मन्त्रों का कुछ कुछ हिस्सा लिखकर लिखा है कि क्या अब भी दश पतियां के विधानको खैंचातानी में डाल सकोगे—सो निस्सन्देह अब कैसे खींचतान कर सकतेहैं, परन्तु महाराज। यह तो कहिये कि यह मन्त्र पूरे पूरे क्यों न लिखे गये ? और यदि पूरे लिखने में परिश्रम होता था तो फिर अर्थ ही लिख दिया होता और जब यह दोनों बातें भी नहीं हुई हैं तो जाने दीजियेगा परन्तु जो कुछ आप ने लिखा है उससे तो दशही पतिका विधान लिखा है अब बतलाइये वह ग्यारहवां पति कहां गया? सिवाय इसके जो आप दश पुत्र व ग्यारहवां पति की जगह १० पतियों के पश्चात् ग्यारहवां पति मानोगे, तो अब पुत्रों का विलकुल नाश हुआ जाताहै यह क्यों ? कृपानाथ बराजोरी

क्यों संसार की स्त्रियोंको व्यभिचारणी बनाये देते हैं यदि ऐसे वृथा और असत्य लेखपर कृपा ही की जाती तो क्या बुरा था

प्रश्न ५—आपके प्रथम अन्वय अर्थ से प्रत्यक्ष ही (पण्डित जी के लेखानुसार) यह बात झलकती है कि यह आशीर्वाद का मन्त्र है-अब बतलाइये कि आपके अर्थानुसार ऐसा कौन बेईमान आशीर्वाद देनेवाला होगा ? कि कन्या एक पति के साथ बैठी है और उससे कहे कि तेरे ग्यारह पति हों वाह क्या ही उत्तम आशीर्वाद हुआ, और यह आशीर्वाद है या शाप, सनातन धर्मावलम्बी तो कभी ऐसा आशीर्वाद नहीं मान सकते हैं हां अलबत्ता आपके समाजी यदि प्रथम विवाह ही से ११ पति का निश्चय भी कर देते हों तो हम कुछ कह नहीं सकते—

प्रश्न ६—आपने लिखा है कि वेदकी आज्ञानुसार १० से अधिक गर्भाधान व ग्यारह से अधिक नियोग न करना चाहिये-अब बतलाइये कि कदाचित् ग्यारहवीं वार कहीं गर्भाधान होजावे तो क्या उसे गिरा देवें ? या मार डालें और ऐसी अवस्थामें सरकार तो उससे कुछ पूछपाछ न करेगी ? और नियोग के विषय में आपने लिखा है सो इसके निस्बत मेरा फिर भी केवल इतना ही प्रश्न है कि यह नियोग किन शब्दों का अर्थ है ?

स० प्र० में स्वामी जी ने (उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं) ऋ० म० १० सू० १८ मं० ८का अर्थ किया है—हे विधवे! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़के बाकी पुरुषोंमें से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त हो, और इस बातका विचार और निश्चय रख कि जो तुझ विधवाको पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा, तो यह जना हुआ बालक उसी नियुक्त पति का होगा इसे निश्चय

युक्त हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करें इसका द० नं० ति० भा० में पंडित जी ने पूरा २ खंडन किया है जिस परसे स्वामी तुलसीराम जी अब भा० प्र० पृ० १६१में यह कहते हैं कि हे नारी तू इस मृतकके समीप सोती है जी-वती दुनिया में तेरा हाथ पकड़ने वाले दूसरे पति की स्त्री होने के नियम स्वीकार कर।

प्रश्न १–महाराज जी पहिले तो यह बतलाइये कि स्वा-मी जी महाराज के अर्थ में वा आपके किये अर्थ में कुछ अन्तर है या नहीं? और सारांश दोनों अर्थों का जुदा २ है या एक? और अब हम किसको सत्य मानें और विष भरा अमृत त्यागने योग्य कौन है? स० प्र० या भा० प्र०—

प्रश्न २—आपके व स्वामीजी के नियोग नियमानुसार स्त्री नियुक्त पतिकी नहीं होसकती है, जैसा कि पुनः विवाह में होजाती है न उसका धर्म नष्ट होता है और इस अर्थ में आप कहते हैं कि दूसरे पतिकी स्त्री होने के नियम स्वीकार कर अब बतलाइये कि आपके इस अर्थ से पुनर्विवाह की ध्वनि निकलती है या नियोग की और यदि आप नियोग की बतलावें तो फिर बतलाओ कि दूसरे पतिकी स्त्री होने में प्रथम पति का नाम कहा जावेगा और अब उससे जो स-न्तान होगी वह अपने पिता की जगह किसका नाम बत-लावे, व अब भी ऐसी सन्तान को वर्णसंकर कह सकते हैं या नहीं तथा बताओ कि वर्णसंकर किसको कहते हैं।

प्रश्न ३–आपने भा० प्र० पृ० १६२ पं० ८ में लिखा है कि नियोग भी एक प्रकार का विवाह है और स० प्र० में जहां पुनर्विवाह व नियोग के भेद बतलाये हैं लिखा है कि वि-वाह में स्त्री के पालन पोषण का भार पुरुषके जिम्मे है और वह स्त्री घर छोड़ पति के यहां चली जाती है, और नियो-

ग में यह बात नहीं होती, कार्य पश्चात् उन का संग छूट जाता है और वह अपने अपने घर रहते हैं—बतलाइये कि अब यह नियोग एक प्रकार का विवाह कैसे होसकता है ? यह तो खासा व्यभिचार है।

भा० प्र० पृ० १६२ पं० ११ में पांच श्लोक मनु अध्याय ९ के ५९ से ६३ तक लिखे हैं और उनके नीचे लिखे अनुसार अर्थ लिखा है—

"देवर या सपिंडसे नियोग करके स्त्रीको मनचाही सन्तान उत्पन्न कर लेनी जब कि कुलक्षय होता हो (५९) अब प्रथम यह बतलाओ मनचाही सन्तान उत्पन्न कर लेनेसे (आपकी लिखी केवल १० सन्तान उत्पन्न करे) यह बात असत्य होती है या नहीं ? दूसरे स० प्र० में स्वामीजी ने लिखा है कि नियुक्त पति को देवर कहते हैं और यहां आप के अर्थानुसार मनु जी देवर से सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा देते हैं अब बतलाइये कि स्वामी जी का कहना ठीक है या पण्डित जी का और इस अर्थ में देवर नियुक्त पति के पूर्व आता है या पश्चात्—क्या अब भी पति के छोटे भ्राता को देवर न कह कर नियुक्त पति को ही देवर कहते जाइयेगा—

अब साठवें श्लोक का अर्थ देखिये—

जो पुरुष विधवा से नियोग करें वह रात्रिमें मौन धारणकर शरीर पर घृत मलके एक पुत्र उत्पन्न करें दूसरा नहीं।

अब पहिले तो फिर भी यह बतलाओ कि वह आपके दश पुत्र वा दश पति कहां गये ? और अब आपका यह अर्थ वेद मन्त्रका जिसमें आप नियोग से दश सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा बतलाते हैं असत्य होता है या नहीं ?

अब ६१–६२–६३ का सारांश देखिये विधवा से नियोग करने में वीर्यदान का काम निपटने पर वे स्त्री पुरुष आप-

स में गुरु और पुत्रवधू के सदृश रहैं, और जो स्त्री पुरुष नियोग की विधिका उल्लंघन करें वे दोनों पुत्रवधू गामी और गुरु स्त्री गामी के तुल्य पतित हों, कहिये कृपानाथ अब आप या आपके समाजी उस स्त्री को जिस से नियोग किया है वीर्यदानके पश्चात् उसको पुत्रवधू या भगिनी या कन्या मानेंगे या नहीं ? और ऐसी व्यवस्था में तो उस का पांव पड़ना भी आपको अनुचित न होगा इसपर यदि आप कहैं कि मनुजी ने पुत्रवधू लिखा है-कन्या भगिनी नहीं लिखा, तो जरा आंख खोलके देख लीजिये कि शास्त्रकारोंने पुत्रवधू वा कन्या वा भगिनी को हर प्रकार समानता दी है अब इसके आगे मनु के दो तीन श्लोकों का अर्थ मैं भी नकल करता हूं यह भी देखियेगा-मनु० ९—६४ द्विजातियों की विधवा वा सन्तान रहित स्त्रियां स्वामी के लिये दूसरे पुरुष से गमन करने के लिये हो सकती हैं ऐसा समझ के जो लोग नियुक्त हों वे आर्यधर्म के उल्लंघन करने वाले हैं मनु० ९—६५ विवाहके जो सब मन्त्र हैं उनमें ऐसा प्रकाशित नहीं है कि एककी स्त्रीसे दूसरेका नियोग होताहै और विवाह शास्त्र में ऐसी विधि नहीं है कि विधवाओं का पुनर्विवाह होसके—

मनु०—९—६६ यह पशुधर्म कहाने से सुशिक्षित शास्त्र जानने वाले द्विजातियों के बीच निन्दित है पहिले वेणराजा के राज्यशासन के समय यह रीति मनुष्यों के बीच प्रचलित हुई थी—

मनु०—९—६७ उन्होंने अपने भुजबल से सारी पृथ्वी के अधीश्वर तथा राज ऋषियों में अग्रगण्य होके पापमें आसक और कामादि के वश में होके ही अपने शासन के समय

में यह विधि प्रचलित करके वर्णसंकरोंको उत्पन्न किया अब इसके पश्चात् एक श्लोक ६८ वां इसी अध्याय ९ जिस का भा० प्र० पृ० १६४ में अर्थ किया गया है, और भी अवलोकन कीजियेगा। अर्थ यह है—

"वेणुराजाके अत्याचारके पश्चात् जो कोई मोहवश विधवा स्त्री का सन्तानार्थ नियोग कराता है उसकी भले लोग निन्दा करते हैं—,'

प्रश्न १—स्वामीजी महाराज मैं आपके श्लोकों को पूरा पूरा मान कर आपसे पूछता हूं कि यदि मनुजी को (चारों वर्ण में) यह नियोग यथोचित समझा जाता तो फिर उनको ६४ वां श्लोक लिखकर द्विजातियों के रोकने की क्या आवश्यकता थी ? और क्या इससे यह नहीं निकलता कि द्विजाति आदि उत्तम वर्ण छोड़कर निकृष्ट वर्ण शूद्रोंमें (आपके लेखानुसार) नियोग होना चाहिये सो अभीतक होताहै इस पर यदि आप कहैं कि यह मिलाया हुआ श्लोक है तो कृपा कर इसको किसी प्रमाण से सिद्ध कीजिये नहीं तो वैसे हमारे विरुद्ध होने से हम भी कह सकते हैं कि यह मिलाया हुआ है बस फिर सम्पूर्ण—स्मृति ही नष्ट हो सकती हैं और फिर जरा ६५ वें श्लोक के तात्पर्य को देखिये कि जब मनुजी पुनर्विवाह को जो एक प्रकार नियोगसे उत्तम है निषेध करते हैं तब वह हर वर्ण में नियोग को कैसे आज्ञा देंगे कुछ वे मेरे आपकी नाईं नहीं थे कि जहां जो जीमें आया लिखदिया यद्यपि इन श्लोकोंका अर्थ बदलनेमें आपने परिश्रम उठाया है पर इसमें आपको जन्म से जाति माननी पड़ी है पृ० १६५ प० ८ देखो, करे थे नियोग खण्डन जाति गले पड़ी खूब कहां अगाड़ी पिछाड़ी भी न सूझी।

प्रश्न २—आप अपने विरुद्ध श्लोकोंको कहते हैं कि राजा

वणु का अत्याचार देख कर यह नियोग निन्दा के श्लोक किसी ने मिला दिये हैं क्योंकि वणु स्वायंभुव मनु के बहुत काल पश्चात् हुआ है महात्माजी अब प्रथम तो यह कहिये कि स्वायंभुव मनु कैसे पुरुष थे उत्तम व निकृष्ट ? और वह त्रिकाल दर्शी थे या नहीं ? यदि उत्तम व त्रिकालदर्शी नहीं थे—तो फिर उनकी स्मृति को क्यों मानके योग्य समझें—और जो आप कहें कि वे उत्तम व त्रिकालदर्शी थे तो फिर बतलाइये कि उनके भविष्य लेखों में क्यों सन्देह करके वह लेख वेणु के पश्चात् किसी के मिलाये हुए कहे जाते हैं इस पर यदि फिर आप कहें कि भविष्य लेख सच्चे नहीं समझे जाते हैं तो लीजिये मैं ३२७ वर्ष का ही गुसाईं जी का भविष्य लेख आपके दृष्टिगोचर करता हूं देखिये—

दोहा

कलिमल ग्रसेउ धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन निजमत कल्प कर प्रगट किये बहुपन्थ ॥

परन्तु इसको आप अपने ऊपर न समझिये किन्तु हम को समझियेगा—फिर

मारगसोइजाकहंजो भावा । पण्डित सोइ जो गाल बजावा ॥
जोबहुझूठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुणवन्त बखाना॥
शूद्र द्विजहिं उपदेशहिंज्ञाना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥

दोहा

वादहिं शूद्र द्विजन कहं हम तुम से कछु घाट ।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर आंख दिखावहिं डाट ॥

चौपाई

मार मुई गृह सम्पति नासी । मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी ।
सबनरकल्पितकरहिं अचारा । जाय न बरणि अनीति अपारा ॥

इत्यादि २ विशेष देखना हो तो तुलसीकृत रामायण उत्तरकांड में देख लीजिये और कहिये यह भविष्य लेख ३२१ वर्ष पहिले के आज सत्य २ दीखते हैं—वा नहीं ? और जो दीखते हैं तो फिर मनुजी के लेखपर सन्देह क्या ? और केवल यह ही क्यों ? आपके भा० प्र० पृ० १६१के ऋ०—१०-१० १० अथर्व १८-१—११ के अर्थ में भी तो आपने प्रथमही भविष्य लेख कहा है।

प्रश्न ३—स्वामीजी महाराज यदि हम आप के लेखानुसार यह भी मान लेवें कि यह नियोग निन्दाके श्लोक पीछे मिला दिये गये हैं तो भी मैं पूछता हूं कि यथार्थ मिलाये हैं, या व्यर्थ ? और वह मिलानेवाले जिनको समय होगया और जिनके मिलाये श्लोकोंको आजतक सम्पूर्ण सृष्टि मान ती है आपकी अपेक्षा बुद्धिमान् थे या मूर्ख ? और क्या आप उनके लेख में भी कहीं ऐसा दोष दिखला सकते हैं कि जैसा स० प्र० में मृतश्राद्ध माना दूसरी वार उस को मिटा दिया और छापे की गलती बतलादी।

स्वामी जी ने लिखा है कि गर्भवती स्त्री से यदि एक वर्ष समागम करे बिन न रहा जावे, तो वह नियोग करके दूसरा पुत्र उत्पन्न कर ले और जब पण्डित जी ने इस पर समीक्षा की तब आप भा० प्र० पृ० १६९ में इसको छापे की अशुद्धि बतलाने लगे, अब कहिये इन में कौन लेख विश्वासके योग्य है ? और छापे की अशुद्धि एक दो अक्षरों में होती है या २-२-४—४ पत्रों में भी होसकती है।

प्रश्न ४—आपके अर्थानुसार मनुजीके श्लोकोंसे यह बात स्पष्ट निकलती है कि यदि वंश क्षय होता हो तो विधवा स्त्री देवरसे एक सन्तानोत्पत्ति करले और आपके स्वामीजी कहते हैं कि पति परदेश गयाहो तो ८ वर्ष विद्या पढ़ने गया

हो तो ६ वर्ष, धनको गया हो तो ३ वर्ष बाट देखे पश्चात् नियोग करके सन्तान उत्पन्न करले, और पतिके आये पर नियुक्त पति छोड़कर स्त्री अपने पतिके साथ चली जावे, कहिये अब मनुजी की आज्ञा में व इसमें कितना अन्तर है ? और ऐसा लेख क्यों लिखा गया है—और यह भी नहीं कुछ और देखिये कि बन्ध्या आठवें वर्ष—सन्तान होकर मरजावे तो दशवें वर्ष और कन्या ही कन्या हो पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष व पति अप्रिय बोलने वाला हो तो उसी समय में नियोग करके सन्तान उत्पन्न करले, दीनानाथ! अब आप यह तो कहिये कि यह लेख असत्य है या नहीं भला स्त्रीके सन्तान ही उत्पन्न होती तो वह बन्ध्या क्यों कहलाती हैं। और जिसके पुत्र होकर मरजाते हैं अथवा कन्या ही कन्या होती हैं उसको नियोग से यदि फिर भी कन्या ही हुई या पुत्र होकर मर गया या गर्भ ही न रहा तो फिर आप क्या कर सकते हैं और फिर इसको व्यभिचार कहोगे या नियोग और नियोग से तो झटही सन्तान उत्पन्न होगी कारण कि वह व्यभिचार है ना।

प्रश्न ५—भा० प्र० पृ० १६७ में कहते हैं कि नियोग आपके मिटाये किसी प्रकार नहीं मिट सकता सो हमारी बला से न मिटे और आप दश नियोग करने की आज्ञा देते हैं हम कहते हैं कि १०१ होना चाहिये पर जिन श्लोकों का आप मनमाना अर्थ करके प्रमाण देते हैं उनमें एकही वारके वीर्य दान से सन्तान उत्पन्न होना लिखा है और वह भी कन्या न होकर पुत्र ही होना चाहिये, कहिये आप भी ऐसा कर सकते हैं, या करा सकते हैं ? और यदि नहीं कर सकते तो फिर सम्पूर्ण लेख आपके व्यर्थ क्यों न समझे जावें और आप को भी इस कहने में क्या लज्जा है ? कि हम तो नियोग के

बहानेसे व्यभिचार फैलाकर स्त्रियोंका धर्म नष्ट भ्रष्ट करना है।

स्वामीजी महाराज आप तो स्वामी हैं, आपको इस से क्या और जब कि आपको इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है और न यह मालूम है कि स्त्री को दूसरे पुरुष से हंसते बोलते ही उसके निजपति को कितना क्रोध आ जाता है और वह उस क्रोध की अवस्थामें क्या क्या नहीं कर डालता (देखिये श्री रामचन्द्रजी ने इसीपर से रावणके कुलका नाश कर दिया था दुर्योधन ने सभा में द्रौपदी जी से केवल जंघा पर बैठने को कहा था कि इतने ही कहने से जब तक भीम- सेन ने दुर्योधन को गदा से नहीं मारडाला तब तक उन का क्रोध शांत नहीं हुआ) तब मैं नहीं कह सकता कि आप नियोग मण्डनमें वृथा क्यों इतने कटिबद्ध हुएहैं हां यदि इस में भी कोई गुप्त तात्पर्य हो तो वह मेरी समझमें नहींआसक्ता।

प्रश्न ६—आपका व स्वामीजी का प्रथम यह लेख है कि नियोग से जो सन्तान होगी उस से उस स्त्री के मृतक पति का नाम स्थिर रहेगा और फिर (अङ्गा०) एक मन्त्र लिखकर स्वामीजी उसके अर्थ में कहते हैं कि हे पुत्र ! तू मेरे अङ्ग२ से उत्पन्न हुआ है मुझसे पूर्व मतमर और इसपर पण्डितजीने स- मीक्षा भी की है परन्तु आप ने भा० प्र० पृ० १६९ में इस को गोल माल करके छोड़ दिया, कहिये यह क्यों ? खैर अब ब- तलाइये कि वह पुत्र किसका होगा अर्थात् जिसके अङ्ग २ से हुआ है उसका या मृतकका ?—

पंचम समुल्लास खंडनम्

सन्यास प्रकरण

स० प्र०में मनु० अ० ६ का श्लोक ३३ लिखकर अर्थ किया है कि वन में आयु का तीसरा भाग अर्थात् २५ से ७५ वर्षतक

वानप्रस्थ रहकर आयु के चौथे भाग में संगोंको छोड़ सन्यासी होजावे—बाल्यअवस्था में विरक्त होकर विषयों में फंसे वह महापापी है और जो न फंसे वह पुण्यात्मा है इस पर द० नं० ति० भा० का यह लेख है कि हम इसी लेख से स्वामीजी के सन्यास की परीक्षा करते हैं कि आपने ७५ वर्ष के पूर्व ही सन्यास ले लिया और विषय संग भी नहीं छोड़ा आप को पाप हुआ या नहीं ? और पंडितजी ने वह विषय बतलाये हैं जिनमें वह फंसे हैं अब भा० प्र० का पृ० १७१ में प्रत्युत्तर देखिये—स० प्र० के सन्यास प्रकरण के श्लोक का खंडन मंडन न करके स्वामीजी के निज सन्यास व्यवहार पर दोष लगाया है—स्वामीजी ने गृहस्थादि न करके जो सन्यास ग्रहण किया सो यही देख लीजिये कि (यदहरेव विरजे०) अर्थात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन त्याग दे चाहे ब्रह्मचर्य से चाहे गृहस्थ से इत्यादि—

प्रश्न १–स्वामीजी के लिखे ही श्लोक पर से यदि पंडित जीने कुछ प्रश्न किये और स्वामीजीके दोष बतलाये तो क्या बुरा किया और क्या वे बातें जो पंडित जी ने लिखी हैं स्वामी जी में नहीं थीं और क्या स्वामीजी को यह श्लोक नहीं मालूम था जो आपने लिखा है और था तो फिर उन्होंने इसीको क्यों न लिख दिया कि जिस में पण्डित जी को यह समीक्षा करने का अवसर ही न मिलता और अब हम स्वामीजी के लिखे श्लोक को सत्य समझें या आपके ।

प्रश्न २—आपने अपने लिखे श्लोक का कोई पता न लिखकर लिखा है कि वहीं देख लेवो अब बतलाइये कि हम कहां देखें स० प्र० में या मनुस्मृति में जिसमें इस श्लोक का कहीं पता भी नहीं लगता, मालूम नहीं आपको ठीक ठीक पता लिखने में किस बात का भय है ।

प्रश्न ३—आपके लेखसे ऐसा विदित होता है कि स्वामी जी महाराज ने प्रथम पलंग, तकिया, शाल, दुशाले इत्यादि विषय भोग के फिर सन्यास लिया और सुनने में बहुधा ऐसा आता है कि प्रथम सन्यास लेकर फिर इस विषय वासना में वे प्राणान्त तक पड़े रहे और अन्तिम समय में द्रव्य इत्यादि सम्पूर्ण विषय की वस्तुयें उनके पास निकली थीं और सुना हुआ क्या आपने भी तो पृ० ४ में ऐसाही लिखा है कि आर्य समाज स्थापन करने के पूर्व स्वामीजी दिगम्बर रहकर गंगा तट पर विचरा करते थे तो अब इससे स्पष्टही मालूम होता है कि वस्त्र इत्यादि विषय स्वामीजी ने पीछे स्वीकार किये हैं। अब बतलाइये कि हम आपके किस लेख को सत्य समझें।

सप्तम समुल्लास खंडन

देवता प्रकरण

स० प्र० में स्वामीजी ने (त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता) लिख कर अर्थ में केवल ३३ देवता बतलाये हैं और पण्डितजीने लिखा है कि इसके अर्थ से तो ३०३३ निकलते हैं यह गड़बड़ी क्यों? इस पर भा० प्र० के लेख का सारांश यह है ऊपर का पाठ छपते में अशुद्ध हो गया—यजुर्वेद का १४—३१ वां मन्त्र देखिये जिसमें ३३ से अधिक का वर्णन नहीं है फिर कुछ प्रमाण लिखकर अर्थ में पृ० १७७ पं० १९ में लिखा है कि ऊपर लिखे यजुर्वेदके मन्त्रमें इस प्रकार देवतोंके नाम बताएहैं वसु ११ रुद्र १२ आदित्य, मरुत, ऋत्विज् लोग विश्वेदेवा संसार भर के दिव्यगुण युक्त पदार्थ और मनुष्य बृहस्पति, परमात्मा इन्द्र विजली और वरुण, जल, वा अन्य पदार्थ जो वरणीय गुणों से युक्त हों ये सब पदार्थ देवता हैं।

प्रश्न १—कहिये स्वामीजी महाराज अब देवता ३३ ही रहे या अगणित होगये इस पर यदि आप फिर भी ३३ बतलावें तो देखिये आपने ऊपरसं सारभरके दिव्य गुण युक्त पदार्थों को देवता बतलायाहै या नहीं अच्छा इनको जाने दीजिये आगें और चलिये बैल,घोड़ा,गधा, इत्यादि गुण युक्त पदार्थ हैं या नहीं जिनसें सम्पूर्ण संसारका निस्तार होताहै फिर देखिये पत्थर, ईंट लकड़ी सोना चांदी इत्यादि गुण युक्त पदार्थ हैं या नहीं जिससे सम्पूर्ण संसार का उपकार होता है इसके अतिरिक्त आप मनुष्यों को देवता लिख ही चुके हैं जिनमें से आप विद्वान् ही विद्वान् लेवें, तो भी शायद दश पांच करोड़ से कम न होंगे। अब कृपाकर आपही तो गिनती कीजिये कि कितने देवता हुए वाह क्यों न हो पितर प्रकरण में दूध घी खाने पीने वालों को पितर बनाकर आप ने केवल जड़ पदार्थ छोड़के सम्पूर्ण संसार को पितर बनादिया यहां गुण युक्त कह कर वह भी न छोड़े और संसार भर को देवता कह दिया अब आगे मालूम नहीं आप और क्या क्या बनावेंगे—

ईश्वर विषय प्रकरणम्

—:०:—

स० प्र० में लिखा है कि ईश्वर दयालु वा न्यायकारी है परन्तु न्याय व दया में नाम मात्र भेद है न्याय उसे कहते हैं कि जिसने जैसा बुरा काम किया हो उसे वैसा दण्ड देना और दया उसे कहते कि डाकू को कारागार में रखकर पाप से बचाना और पंडित जीने इसका इस प्रकार खंडन किया है कि न्याय उसे कहतेहैं कि जो दंड योग्य हो उसे दंड देना और जो दया योग्य हो उसपर दया करना और दया वह

बात है कि यदि किसी से अनजाने कोई अपराध बन गया हो तो उसकी स्तुति पर उसे क्षमा करना क्योंकि दया का प्रयोग अपराधी परही होता है और इसके सिद्ध करने के प्रमाण में २ मन्त्र यजुर्वेद के दिये हैं जिनपर भा० प्र० का केवल इतना ही प्रत्युत्तर है कि आपके अर्थ से भी यह बात नहीं निकलती कि ईश्वर अपराध क्षमा करता है—

प्रश्न १—तो क्या आप ऐसा समझते हैं कि ईश्वर अपराध जिसके वास्ते हम स्तुति करें क्षमा नहीं करता या करसकता है और जो नहीं कर सकता है तो फिर स्वामी जी ने स० प्र० पृ० १८५ पं० २१ में यह प्रार्थना क्यों की है? कि हे सुख के दाता प्रकाश रूप सब जानने हारे परमात्मा आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और हममें जो कुटिल आचरण रूपी मार्ग हैं उससे पृथक् कीजिये इसीसे हम लोग नम्रता पूर्वक आपकी स्तुति करते हैं—अब कहिये किसको सत्य समझियेगा—

निराकार प्रकरणम्

स० प्र० में स्वामीजी ने ईश्वर को निराकार लिखा है और कहा है कि यदि ईश्वर साकार होता है, तो उस के नाक कानादि अवयवों का बनाने वाला दूसरा होना चाहिये इत्यादि, और पंडितजी ने अपने लेख में ईश्वरको साकार वा निराकार दोनों प्रकार से सिद्ध किया है—अब इस पर स्वामी तुलसीराम जी ने जो प्रत्युत्तर दिया है उस पर मेरे यह प्रश्न हैं—

प्रश्न १—ईश्वर जब कि आपके लेखानुसार निराकार है तब बतलाइये कि उसका नाम ईश्वर क्यों हुआ? क्या निराकार वस्तु का भी कोई नाम होसकता है यदि होसकताहै

तो सिद्ध कीजिये—

प्रश्न २—आपने ईश्वर को दयालु व न्यायी भी लिखा है अब बतलाइये कि यह बातें निराकार में जब कि उसका कोई आकार ही नहीं है कैसे घट सक्ती हैं? और क्या कोई शरीर रहित होकर के भी कुछ न्याय कर सकता है? और यदि कर सकता है तो बतलाइये कि यह उसका न्याय हमको कैसे मालूम हो सकता है? जब तक मालूम न हो तब तक हम कैसे कह सकते हैं कि फलाने ने यह न्याय किया और जब यह नहीं कह सकते तब उस का न्यायी नाम भी कहना व्यर्थ होगा—

प्रश्न ३— आप ने भा० प्र० पृ० २४३ में एक श्लोक के अर्थ में लिखा है कि उस ब्रह्मांड नामक गोले में सब लोकका पितामह प्रकृति सहित परमात्मा प्रकट हुआ—अब कहिये इसका तात्पर्य क्या है? और क्या अब भी प्रकृति सहित परमात्मा का प्रकट होना निराकार ही कहते जाइयेगा? और क्या उस सर्व व्यापी परमात्मा का प्रकट होना अबभी आपके लेखानुसार ही उसकी साकारता को सिद्ध नहीं करता है—और जो फिर आपने यह लिखा है कि अब प्रकृति जगत्‌द्वारा परमात्मा जानने योग्य हुआ सो महाराज जो जगत् के जानने योग्य होना भी साकारता को ही सिद्ध करता है क्योंकि निराकार को सिवाय आप ऐसे महात्माओं के आज तक न किसी ने जाना है न जान सकता है।

प्रश्न ४—आपने लिखा है कि अब प्रकृति सहित परमात्मा जानने योग्य हुआ अर्थात् पहिले जानने योग्य नहीं था अब बतलाइये कि प्रथम जब वह जानने योग्य नहीं था तब कैसा था? और अब जब जानने योग्य हुआ तब कैसा हुआ

द० नं० ति० भा० के इस लेख को (द्विबाव ब्रह्मणोरूपे०)

कि ईश्वर के दो रूप हैं एक मूर्तिमान् व एक अमूर्तिमान् स्वामीजी ने भी भा० प्र० पृ० १८१ में स्वीकार किया है परन्तु फिर कहते हैं कि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्म-स्वरूपतः दो प्रकार का है किन्तु यह तात्पर्य है कि मूर्ति अमूर्ति २ प्रकार के पदार्थ का स्वामी ब्रह्म है—जैसा कि देवदत्त के दो गऊ हैं एक काली एक लाल—तो क्या इस से यह कहा जा सकता है कि देवदत्त स्वयं दो स्वरूपका है? कभी नहीं? और फिर आप ने पांच तत्वों में से पृथ्वी जल अग्नि को मूर्तिमान् व वायु अन्तरिक्षको अमूर्तिमान् कहा है

प्रश्न १—स्वामीजी महाराज आपने अमूर्तिमान्को पदार्थ कैसे लिखा है? क्या वह अमूर्तिमान् भी कोई वस्तु है? और यदि है तो फिर वह अमूर्तिमान् कैसी? वह तो अवश्य ही कुछ वस्तु होना चाहिये क्योंकि इसके सिवाय शायद पदार्थ शब्द घटही न सकेगा?

प्रश्न २—आप ने वायु व अन्तरिक्षको अमूर्तिमान् बतलाया है पर आकाश की विभुता और शब्द प्रत्यक्ष होता है अब रही वायु सो यद्यपि हमको प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती परन्तु उसका धक्का अवश्य हमको लगता है और जबकि उसके धक्के से अच्छे पेड़ गिर पड़ते हैं तब वह अवश्य ही पदार्थ है। और जब यह दोनों कार्य से साकार हैं तब बतलाइये कि अब वह अमूर्तिमान् पदार्थ कौनसा है और आप का यह तात्पर्य कैसा है।

प्रश्न ३—यदि हम आपके लेखानुसार कभी यह भी मान लेवें कि आकाश व वायु अमूर्तिमान् है, तो शास्त्रकारों ने इन पांचों तत्वों के रंग अलग २ बतलाए हैं।

अब बतलाइये कि क्या अमूर्ति पदार्थ का भी कोई रंग होसकता है।

प्रश्न ४—आपने देवदत्त का दृष्टांत देकर भुलवा दिया है सो तो ठीक है अपनी अपनी बात को सिद्ध करना ही चाहिये परन्तु यह तो कहिये कि कहां वह ब्रह्म और कहां आपका यह देवदत्त है। महात्माजी यदि आपको वृथा हठ ही करना है तो खुशी से कीजिये नहीं तो ब्रह्म के निःसंदेह दो स्वरूप हैं और वह ऐसेहैं–जो गुणरहित सगुण सो कैसे–जल हिम उपल विलग नहिं जैसे॥

प्रश्न ५—स्वामी जी महाराज यह भी तो कहिये कि अग्नि प्रत्येक पदार्थ में है या नहीं। और यदिहै तो फिर बतलाइये कि जब तक वह प्रकट न हो कुछ भी कर सकता है या किसी के कुछ उपयोग में आसकता है। कभी नहीं और प्रकट होने पर फिर देखिये कि वह क्या नहीं कर सकती है बस अब अच्छी प्रकार समझ लीजिये कि इसी तरह ईश्वर है और यद्यपि वह सर्वव्यापी है परन्तु जब तक साकार हो के प्रकट न होगा वह कुछ नहीं कर सकता है।

प्रश्न ६—स० प्र० में प्रथम १०० नामों की व्याख्यामें सूर्य इत्यादि नाम ईश्वर के बतलाये गये हैं कहिये अब भी ईश्वर साकार है या निराकार और क्या वह कोई दूसरा सूर्य है। जिसे स्वामीजी ने ईश्वर माना है स्वामी जी महाराज यथार्थ तो यह है कि सगुण उपासना में अच्छे अच्छे मुनीश्वर भी भ्रांत होकर चक्कर खाजाते हैं और खाते आये हैं क्योंकि उसके चरित्र ही ऐसे हैं उसी उपासना विषयमें यदि आपको भ्रम होगया है, तो यह कोई कठिन बात नहीं, जैसा कि रामायण का यह दोहा है—

दोहा

निरगुण रूप सुगम अति सगुण जान नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होय॥

सो देखिये यह उस समयका कहा हुआ है कि जब आप के स्वामीजी व आपकी आर्यसमाज का जन्म भी न था अब यदि इतने पर भी आपको इसका समाधान न हो तो बहुत ही अच्छा है आप अपने भ्रमरूपी समुद्र में ही गोते लगाते रहियेगा--

अवतारप्रकरणम्

भा० प्र० पृ० १८२ से २०९ तक अवतार प्रकरण है जिस में स्वामीजी महाराज ने पण्डित जी के दिये हुए सम्पूर्ण वेद मन्त्र इत्यादि के प्रमाणों का सिर से पैर तक अर्थ बदलकर अपनी तरफ को खींच लेगये हैं परन्तु ब त वही है कि—

उघरहि अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वामीजीने इन अर्थों के बदलने में बड़ी ही चतुरता दिखलाई है—परन्तु मेरी समझमें वृथाही इतना परिश्रम उठाया गया, किन्तु उनका तो इतना ही लिख देना बस था, कि तुम हजार प्रमाण दो हम एक भी न मानेंगे—कि इतने ही में सम्पूर्ण झगड़ों की इतिश्री होजाती पर खैर जब उन्होंने इतना परिश्रम उठाया है तब हमको भी जहां जहां शंकाएं हैं प्रश्न द्वारा उनका समाधान करा लेना शायद व्यर्थ न होगा।

प्रश्न १—कहिये महाराज जी क्या पण्डित जी का किया हुआ अर्थ एक भी मन्त्रका ठीक नहीं है? और क्या उनको इसी विद्या पर सनातन धर्म महामण्डल सभा दिल्ली से उन को विद्यावारिधिकी उपाधि दीगई है, और क्या वहां कोई विद्वान् न थे सम्पूर्ण मूर्ख ही मूर्ख जमा हुए थे या आप के समान कोई विद्वान् अर्थ का अनर्थ करनेवाला न था (मिश्र जी के मन्त्रों का अर्थ नीलकण्ठ भाष्यमें ऐसाही है देखलो)

प्रश्न २—क्या आप अपने किये हुए अर्थ में कोई प्राचीन भाष्य को भी साक्षी देसक्ते हैं जैसा कि पंडितजी महाराज कहते हैं और यदि नहीं देसक्ते, तो फिर कहिये कि आपका किया हुआ अर्थ कैसा समझा जावे ?

प्रश्न ३—आपने जितने मन्त्रों का अर्थ इस अवतार विषय में बदला है उनमें से बहुतों के नीचे यह लिखा है कि इसमें राम कृष्णादि का नाम नहीं आता सो तो आपके अपने अर्थानुसार ठीक ही है परन्तु यह भी तो बतलाइये कि आपने भी तो कहीं यह बात सिद्ध नहीं की कि ईश्वर अवतार नहीं लेता है कहिये अब इसको कैसा समझें—

प्रश्न ४—आप यदि स्वामीजी के लेखानुसार केवल (अज) (अकाय) शब्द पर ही ईश्वर के अवतार में सन्देह करें—तो अब बतलाइये कि सर्वशक्तिमान् भी है या नहीं ? और यदि है तो फिर क्या अवतार लेना उसकी शक्ति के बाहर हो सकता है ? और वही (स्वयम्भू शब्द) स्वयं होनेवाला है या नहीं ?

प्रश्न ५—स्वामीजी महाराज आपने पंडित जी के अवतार विषय पर दिये हुए बहुतसे प्रमाणोंका तो अर्थ बदलके खंडन कर दिया—परन्तु नीचे लिखे हुए श्लोक व मन्त्रों में आपने बिलकुल हाथ नहीं डाला यह क्यों, देखिये यजु० अ० १० मृ० २४ जिसमें पंडितजी ने सम्पूर्ण अवतार सिद्ध कियेहैं, आपने छोड़ दिया—

ऋ० २।१।११ व ऋ० ३।८।९ जिनसे पंडित जी ने रामावतार सिद्ध किया है आपने छोड़ दिया—

फिर गीता का १ श्लो० जिसमें पंडितजी के अर्थानुसार ईश्वर का स्वयं यह कहना है कि मैं धर्म के स्थापन व दुष्टों

के नाश करने को युग युग में अवतार लेता हूं-आपने छोड़ दिया—

फिर वाल्मी०रा० बालकांड सर्ग १५ श्लो० १६ व सर्ग २० श्लो० २९ जिसमें पंडित जी ने अवतार सिद्ध किये हैं आपने छोड़कर केवल इतना लिख दिया कि इसका उत्तर ११ वें समुल्लास के पृ० ६५—६६ में देखो इन पृष्ठों में आप ने केवल उत्तर कांड को पीछे का बना हुआ बतलाकर पंडित जी के लिखे श्लोकों का कोई खंडन नहीं किया—

अब बतलाइये यह धोखेबाजी क्यों ? यदि इनमें अर्थ बदलने का साहस नहीं होता था तो केवल इतना ही कह देना बस होता-कि यह किसी के मिलाये हुए हैं इस कारण इनका हम कोई उत्तर नहीं देते—

प्रश्न ६—आपने वाल्मीकीय रामायण के साथ यह भी लिखा है कि द० नं० ति० भा० में अवतार सिद्ध करनेको महाभारत के प्रमाण दिये हैं-अब जरा बतलातो दीजिये कि वह महाभारत के प्रमाण कौन २ हैं और यदि नहीं बतला सकते तो यह असत्य क्यों लिखा गया ?

सर्व शक्तिमान् प्रकरण

भा० प्र० पृ० २७९ में स्वामीजी के लेख का सारांश यह है कि जो ईश्वर को सर्वशक्तिमान् समझ के उसका असम्भव देहादि धारण करके अवतार लेना मानते हैं उस पर स्वामी जी का कहना है कि यह उनकी भूल है —किन्तु जो कुछ वह अपनी सर्वज्ञता व अनन्त सामर्थ्य से करता है उस में किसी की सहायता नहीं लेता और यदि निष्प्रयोजन व असम्भव बातों में सर्वशक्तिमान् को काम में लाना समझा जावे, तो क्या अपने को मार भी सकता है या अनेक ईश्वर

अपने सदृश बना सकता है।

प्रश्न १—जबकि आपके लेखानुसार ही यह जीवात्मा न कभी हनन हुआ है न होता है तब बतलाइये कि परमात्मा के निस्बत यह शंका क्यों की (कि क्या अपनेको मार अनेक ईश्वर भी बना सकता है) और जब कि वह सर्वशक्तिमान् है तब उसको यदि वह चाहै तो स्वामीजीके लेखानुसारही करना क्या असम्भव है।

प्रश्न २—बिना पांवके चलना या बिना कानके सुनना या बिना नासिका के सुगन्धि लेना इत्यादि बातें संभव हैं या असम्भव—यदि असम्भव हैं तो बतलाइये कि जब वह परमेश्वर ऐसे ऐसे असम्भव काम कर सकता है तब उस का अवतार इत्यादि लेना, क्या असंभव व उस की शक्ति से बाहर है—

प्रश्न ३—और जो आपने (निष्प्रयोजन) शब्द लिखा है सो बतलाइये कि इस संसार के बनाने से और इसमें अनेक जीव, मनुष्य, सिंह, कीट, पतंग, नदी पहाड़ इत्यादि बनाने से उसको क्या प्रयोजन था—क्या वह इन जीवों की कमाई खाता है या किसी नदीमें स्नान करने आता है या किसी पहाड़ पर हवा खाने फिरता है—और जबकि उसने इतने २ काम निष्प्रयोजन ही किये हैं तब उसका निष्प्रयोजन अवतार लेना भी क्या आश्चर्य की बात है? अब इस पर यदि आप कहैं कि यह सब बनाकर उसने अपना पराक्रम दिखलाया है तो कहिये कि क्या अवतार लेने में उस का पराक्रम सिद्ध नहीं है—और क्या यह बातें उसकी सर्व शक्तिमत्ता से बाहर हैं—

प्रश्न ४—आप अपने भा० प्र० ही में पहिले लिख आए हैं कि यदि वह परमेश्वर अपनी कृपा से चाहै तो बन्दूककी गोली व तलवार की धार से भी बचा सकता है। अब बत-

लाइये कि यह बन्दूक व तलवार से उसकी कृपा बिना बच-ना संभव है या असम्भव और जब कि वह अपनी कृपा से ऐसे ऐसे असम्भव काम कर सकता है, तब उसके किसी कार्य में भी शङ्का लाना या उसको असम्भव कहना इस को क्या बुद्धिमानी कह सकते हैं। महाराज जी यह सम्भव या अस-म्भव का शब्द केवल मनुष्य मात्र पर ही घटित हो सकता है न कि उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर पर-यदि उसके अस-म्भव कार्य में भी कोई शंका की जावे, तो बस अब मनुष्य में व उसमें कोई भेद नहीं रह सकता और फिर उसका सर्व शक्तिमान् नाम सर्वथा वृथा होजावेगा इससे तो अच्छा यह है कि उसका सर्वशक्तिमान् नाम ही मिटा कर स्वामी दया-नन्द जी का सर्वशक्तिमान् नाम रख दिया जाता तो अच्छा था और यह शब्द स्वामी जी महाराजमें घटभी सकता है।

अघनाशन प्रकरणम्

स० प्र० का लेख है कि ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता, इस पर द० नं० ति० भा० में यद्यपि बहुत कुछ लिखा है परन्तु उसमें से जो कुछ थोड़ा सा लेकर प्रश्नोत्तर की नाईं भा० प्र० पृ० २१४में स्वामीजीने लिखाहै वह यह है

द० नं०—जब पाप क्षमा नहीं करता तो उसके अस्तित्व मानने से क्या लाभ—

भा० प्र०-क्या जो अपराध क्षमा न करे, उसका होना ही स्वीकार न करना चाहिये-धन्य-जब कोई मजिस्ट्रेट अप-राध क्षमा न करके दण्ड देवे तो क्या अपराधी को यह सम-झना चाहिये कि मजिस्ट्रेट है ही नहीं? आपने न्याय तो अच्छा पढ़ा है।

प्रश्न १-वाह, वाह, स्वामीजी महाराज आप को वार २

धन्य है उस निराकार ईश्वर के वास्ते दृष्टांत तो आप ने ऐसा उत्तम व बढ़िया निराकार ही ढूंढ़ा है कि जिसपर अब प्रश्न ही नहीं सूझता परन्तु खैर, थोड़ासा समाधान तो कर ही दीजिये कि क्या वह सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर और यह मजिस्ट्रेट एक बराबर है और क्या जैसे मजिस्ट्रेट साहब की अपील इत्यादि ऊपर के दरजे वाले जज के समीप होसक्ती है वैसे ही उस परमेश्वर के ऊपर भी कोई दूसरा परमेश्वर उसकी अपील सुनने को है? अब इसपर यदि आप कहें कि यहां हमारे मजिस्ट्रेट लिखने का यह अभिप्राय नहीं है किन्तु उस मुल्क मालिक से है जैसा इस समय पञ्चम् जार्ज जी हैं और जिनकी कहीं अपील ही नहीं होसकती तो मैं फिर पूछता हूं कि क्या अब इन महाराजाधिराजकी व उस परमेश्वर की बराबरी होचुकी? और जैसे इन महाराज को परमेश्वर ने उनके कर्मानुसार महाराजा बनाया है वैसे ही उस परमेश्वर को भी किसी दूसरे ने परमेश्वर बनाया है? और क्या जैसे इन महाराज के न्याय अन्याय को अन्तिम दिन कोई पूछनेवाला है वैसे ही उस परमेश्वर का भी पूछने वाला व फल देनेवाला कोई है? और यदि नहीं है तो फिर दृष्टांत कैसा? और अब यह भी कहिये कि अच्छा न्याय पण्डितजी पढ़े हैं या आप? और क्या अब भी हम से किसी अपराध के होने पर हम शुद्ध चित्त से उसकी प्रार्थना करें और वह न सुने व क्षमा न करे यह कोई बात है और क्या? जब हम को पूर्ण विश्वास है कि वह सर्वशक्तिमान् व सर्वव्यापी निःसन्देह हमारे दुश्मन की प्रार्थना सुनकर अवश्य ही हमारे अपराध क्षमा करेगा तब वह क्यों न करेगा बराबर करेगा? हां अलवत्ता आपके निस्बत कि जिनको मजिस्ट्रेट व वह बराबर है, सुने या न सुने, क्षमा करे

या न करे, यह हम कह नहीं सकते ? क्योंकि-जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ॥ फिर—सुफल फले मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीति। और यह भी तो कहिये सन्ध्यामें अघमर्षणसे क्या लाभ है भजनका फल और क्या है

द० न० ति० भा०—जब पाप क्षमा नहीं करता तो उस का भजन करना वृथा है-

भास्कर प्र०-भजन करना इस कारण वृथा नहीं है कि उपासना से ज्ञान बढ़ता है ज्ञानसे अशुभ कर्मों का भविष्यत् के लिये त्याग होता है—

प्रश्न १—जब तक हमारे हृदय में पाप का बीज रक्खा हुआ है तब तक तो ज्ञान का होना हर प्रकार असम्भव है । क्योंकि मैली दीवार पर चाहै कैसा ही उत्तम कारीगर चित्र बनाना चाहै—जबतक कि वह साफ न होगी कभी ठीक चित्र नहीं बन सकता—इसी प्रकार जबतक हृदय रूपी दीवाल से पापरूपी मैल साफ न होगा कभी ज्ञान रूपी चित्र उस पर नहीं बन सकता है हां वैसे आपकी हठपर किसीका क्या वश है पर फिर भी तो जरा छठवें प्रश्न का अपना दिया हुआ उत्तर ही एकवार देख लीजिये कि हमारा कहना ठीक है या आपका ? यह ऊपरी लेख (देखो भा० प्र० पृ०२१५)

द० नं० ति० भा०—जब कि श्रेष्ठ कर्मका श्रेष्ठ फल होता है तब पवित्रात्मा परमेश्वर की नामस्मृति का उत्तम फल क्यों न होगा-

भा० प्र०—कर्म ज्ञान उपासना इन तीन कांडोंको एक समझना अज्ञान है ईश्वर की उपासना को शुभकर्म बताना—इसी से अज्ञान है क्योंकि उपासना वा ज्ञान कर्मसे भिन्न है उपासना का फल संख्या २ में ऊपर कहा गया शुभकर्मों में अग्निहोत्र. वापी, कूप, तड़ागादि पुण्यकर्म हैं उपासना उस

से अगली उत्तम कक्षा है वह कर्मसंज्ञक नहीं है—

प्रश्न १—कर्म क्या वस्तु है और किसको कहते हैं।

प्रश्न २—जब कि ईश्वरोपासना शुभ कर्म समझना अज्ञान है तब क्या ज्ञानी कहलाने के वास्ते ईश्वरोपासना को अशुभ कर्म कहना चाहिये।

प्रश्न ३—यह क्या बात है कि वापी, कूप तड़ागादि जो दूसरे से बनवाये जाते हैं वह तो शुभ कर्म समझे जावें और ईश्वरोपासना जो निज शरीर से की जाती है वह अशुभ सम्झें और उसके करने से अज्ञानी समझे जावें।

प्रश्न ४—आपने यहां ईश्वरोपासना को शुभकर्म बतलाना अज्ञान कहा है और भा० प्र० पृ० २२२ पं० ८ में लिखा है कि वहां भी ईश्वर का ध्यान करना कर्म है और बुद्धि का सत्कर्म में प्रवृत्त करना उसका फल है अब बतलाइये तो इनमें हम किसको सत्य समझें और अब भी ईश्वरोपासना जिस का फल बुद्धि का सत्कर्म में प्रवृत्त होना है शुभकर्म है या नहीं? और अब इससे अज्ञानी किसको कहें? हे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर! ऐसा ज्ञान तो आर्यों के भागहीमें दीजियेगा

द० नं० ति० भा०—जब कि उसका नाम कुछ गुण प्रभाव ही नहीं रखता तब उससे अपने आचरण कैसे सुधारें?

भा० प्र०—उसका नाम स्मरण अर्थ विचार पूर्वक अवश्य प्रभाव रखता है स्वामीजी का तात्पर्य उन बगुला भक्तों के दांभिक नाम स्मरण को व्यर्थ बताने से है जो वाह्याडम्बर मात्र मालादि जपते और चित्त में कुछ नहीं—

प्रश्न १—क्या जो तात्पर्य आपने निकाला है? ऐसा स्वामी जी को लिखते कुछ लज्जा आती थी? क्यों न हो आप को निकलने की जगह मिली है तो केवल तात्पर्य में—

प्रश्न २—क्या आप बगुलाभक्तों को पहिचान या जांच

कर सकते हैं और यदि सिवाय उस सर्वव्यापी परमेश्वर के किसीके दिलकी बात कोई नहीं जान सकता है तो कहिये कि इस तात्पर्य से आपको क्या लाभ हुआ ? और जो आप जान सकते हैं तो अब आपमें व परमेश्वर में किसी प्रकारका भेद समझना बड़ी मूर्खता होगी—

द० मं० लि० भा०—यदि गुण कर्म सुधारना ही प्रयोजन है तो किसी भले आदमीके आचरण देखकर सुधार सकते हैं।

भा०प्र०—भले आदमीके शुद्धाचरण भी परमेश्वर की बराबरी नहीं कर सकते इस लिये भले आदमी के आचार देख कर अपना आचार सुधारना भी अच्छा तो है परन्तु परमात्मा सर्वोत्तम है।

प्रश्न १—क्यों महाराज जी! यहां तो भले आदमी के शुद्धाचरण भी ईश्वर की बराबरी नहीं कर सकते हैं, फिर पहिले प्रश्न के उत्तर में मजिस्ट्रेट का दृष्टांत ईश्वर से कैसा दिया गया है।

प्रश्न २—जब भले आदमी के शुद्धाचरण भी परमेश्वर की बराबरी नहीं कर सकते तब फिर भले आदमीके आचार देख कर अपने आचार सुधारना क्यों बतलाया गया ? क्या इस की भी किसी उपासना में गणना है।

द० मं० लि० भा०—ईश्वर से मेल होने पर पाप कैसे रह सकते हैं। भा० प्र०—ईश्वरसे मेल होने पर पाप नहीं रहसकते परन्तु पापोंके रहते ईश्वरका पूर्ण साक्षात् भी नहीं होता।

प्रश्न १—तो अब कहिये कि यह पाप कैसे दूर होंगे और इन का दूर करने वाला कौन है ? इसपर यदि आप कहें कि कर्म है तो ईश्वरोपासनाका कर्म आप अज्ञानता बतलाते हैं अब तो केवल कुआं इत्यादि खुदाना शुभ कर्म शेष रहा क्या इसीसे उन पापों का नाश होगा और यदि होगा तो कितने

कुआं खुदाने से—

द० नं० ति० भा०—ईश्वर से प्रत्यक्ष होने का अर्थ आप ने नहीं खोला क्या प्रत्यक्ष कहने से साकारता नहीं आ गई।

भा० प्र०—ईश्वर प्रत्यक्ष आत्मा का होता है इन्द्रियों को नहीं इत्यादि।

प्रश्न १—क्यों महाराज जी! मन से (जो एक इन्द्रिय है) ईश्वर का स्मरण किया जावे और उसको उस से कोई लाभ न पहुंचे तो फिर क्या उसका स्मरण करनाही वृथा होगा।

इसी प्रकार के दो तीन प्रश्नोत्तर और हैं जिनको मैं पुस्तक बढ़ जाने के भय से न लिखकर केवल इतनाही पूछता हूं कि जब ईश्वर अपराध क्षमा नहीं करसकता है तब स्वामी जी ने स० प्र० में क्यों पाप क्षमा करने की प्रार्थना की है (देखो दूसरी बार का छपा हुआ स० प्र० पृ० १८५ पं० २१) दूसरी बात मुझे यह भी पूछना है कि जैसे यह प्रश्न आप ने द० न० ति० भा० में से चुन कर निकाले हैं वैसे तो उसमें और भी बहुत प्रश्न हैं उनका उत्तर क्यों न दिया गया।

जीवस्वतन्त्रताप्रकरणम्

स० प्र० का लेख है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र है और पण्डितजी महाराज ने द०न० ति० भा० में जीव को दोनों ही प्रकार से वेद इत्यादि के प्रमाण देकर परतन्त्र सिद्ध किया है इसपर स्वामी तुलसीरामजी भी (जिनका मुख्य अभिप्राय मुझ दुर्बुद्धि की समझमें केवल समाजियों के समीप खण्डन का नाम मात्र करके प्रतिष्ठा बढ़ाने का है) स्वामी द० नं० जीके लेखको पुष्ट करते हैं अर्थात् आपके समीप भी जीव कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र है इस पर मेरे प्रश्न यह हैं—

प्रश्न १-स्वामीजी महाराज! आपने पंडितजीके दिये हुए प्रमाणों का अर्थ तो बदला है परन्तु अपनी तरफ से इस को सिद्ध करने में कोई प्रमाण नहीं दिया यह क्यों? महाराज जी बनी दीवालपर चित्र बनाना व मिटाना यह तो एक मूर्खसे मूर्ख भी कर सकता है-परन्तु बुद्धिमान् वही समझा जाता है कि जो नई दीवाल बनाके दिखला दे और फिर वह सबको पसन्द भी हो।

प्रश्न २-यह बतलाइये कि आपका यह लेख स्वतन्त्रता वा परतन्त्रता का मनुष्यमात्रसे सम्बन्ध रखता है या सम्पूर्ण जीवधारियों से और यदि सम्पूर्ण जीवधारियों से है तो बतलाइये कि एक जीव जो इस समय कर्म वशात् कुत्ता की योनि में जन्म लेकर घर घर टुकड़ा खा रहा है (और यथार्थ में जिसको अपने पोषण के सिवाय और कुछ ज्ञान भी नहीं है) यह घर२ फिरनेका टुकड़ा खानेका कर्म वह स्वतन्त्रतामें करता है या परतन्त्रता में? यदि इसपर फिर आप कहें कि स्वतन्त्रता में तो फिर बतलाइये कि क्या किसी जीव को ऐसा घर घर टुकड़ोंके वास्ते फिरना कभी पसन्द होसक्ता है।

प्रश्न ३—यह एक प्रत्यक्ष बात है कि संसार में कोई मनुष्य ऐसा न होगा कि जो कोई भी उत्तम कर्म न करना चाहै परन्तु नहीं करते इसका कारण क्या है? (जब कि आपके लेखानुसार वह कर्म करने में स्वतन्त्र है) इसका कारण यही है कि जो उसके पूर्व कर्मानुसार ईश्वर ने उस जन्म में उनके वास्ते कर्म करना बतला दिया है उस के विरुद्ध वह किसी अवस्था में नहीं कर सकते हैं इस पर यदि फिर आप कहैं कि क्या जो पूर्वजन्म में कुम्हार था वह इस जन्ममें भी कुम्हार ही होगा? तो इसमें सन्देह ही क्या, निस्सन्देह यदि उसके पूर्व कर्म ऐसे हैं कि जिससे उसको फिर भी गधी

गली का लीद कूड़ा उठाना चाहिये तो अवश्य ही वह कुम्हार होकर वही कर्म करेगा जो ईश्वर ने उसके पूर्व कर्मानुसार उसको बतला दिया है—

प्रश्न ४—इस पर यदि आप फिर भी कहैं कि नहीं जीव कर्म करने में स्वतन्त्र ही है, तो मैं फिर पूछता हूं कि एक मनुष्य ने चोरी की और उसको मजिस्ट्रेट ने उस कर्मके बदले कारागार का दण्ड दिया कि जहां उससे मैला उठवाया जाता है अब बतलाइये कि चोरी का फल तो उसको कारागार वास दण्ड मिल गया अब यह मैला उठाना कर्म उसका स्वतन्त्रता में है ? या परतन्त्रता में ? और क्या स्वतन्त्रतामें मैला उठाना कोई पसन्द करता है ? कभी नहीं, अब इसपर यदि आप फिर कहैं कि वह कारागार है वहां अधिकारी जो कुछ कराना चाहै, उस बंधुआ को सब करना पड़ेगा तो बस दीनानाथ ! यह भी संसार रूपी कारागारहै, और इसका वही सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर अधिकारी है और वह जो २ आप के पूर्व कर्मानुसार इस संसार रूपी कारागार में आपको भेजकर कर्म करायेगा वह निःसन्देह आपको करना ही पड़ेगा यहां आप किसी प्रकार भी कर्म करने में स्वतंत्र नहीं होसक्ते—

प्रश्न ५—कहिये स्वामी जी महाराज ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि जो जीव कर्मफल भोगनेमें परतन्त्र होकर कारागार वास का दण्ड पावे और वहां वह फिर कर्म करने में स्वतन्त्र कहा जावे क्या ऐसा कभी भी किसी प्रकार से हो सकता है—

भक्ष्याभक्ष्य–प्रकरणम्

स० प्र० पृ० २५८ पं० १३ में लिखा है कि अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि

सिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है – और उस से बुद्धि कम हो जाती है और डाढ़ी मूछ रखने से भोजन अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है जिस की द० नं० लि० भा० में पूरी २ नकल है–परन्तु स्वामी तुलसीरामजी इस लम्बे चौड़े लेख में से केवल इतना लेकर (कि अति उष्ण देश में शिखा न रक्खें) भा० प्र० पृ० ३३१ में इस प्रकार उत्तर देते हैं—अति उष्णदेश आर्यावर्त नहीं किन्तु आफ्रिका आदि हैं, इस लिये आर्यों की शिखा छेदन स्वामीजी के लेख से आवश्यक नहीं है।

प्रश्न १—कहिये महाराज! स्वामीजीने तो बहुतही लम्बा चौड़ा लेख व कारण लिखा है और आपने उसको बिलकुल घटाकर केवल शिखा पर ही रख छोड़ा यह क्यों, क्या इसी का नाम बुद्धिमानी है।

प्रश्न २—आप कहते हैं कि अतिउष्णदेश आफ्रिका है इससे आर्यों के शिखाछेदनकी आवश्यकता नहीं है सो यह तो ठीक हुआ पर ऐसा ही साफ लिखते (मालूम नहीं होता) कि स्वामीजी को क्या लज्जा आती थी? और क्या यह स० प्र० आफ्रिका के वास्ते बनाया गया है? आर्यावर्तको नहीं है।

प्रश्न ३–आपके लेखानुसार शिखाछेदन तो आफ्रिका वासियों का होना चाहिये परन्तु यह फिर भी मालूम हुआ कि डाढ़ी मूछ घुटवाने की बला किसके सिर ले जाइयेगा यूरोप इत्यादि सर्द देशवालों के या और किसी के?

प्रश्न ४—स्वामीजी ने डाढ़ी मूछ न रखने का कारण यह बतलाया है कि बालोंमें उच्छिष्ट रह जाता है, परन्तु दीनानाथ! डाढ़ी मूछ की जूठन तो हर किसी प्रकार साफ भी हो सकती है और दांतों का उच्छिष्ट साफ होने में सदैव सन्देह रहता है अब कहिये इन दांतों का क्या प्रबन्ध कीजियेगा

या बिलकुल तुड़वा देना चाहिये ? होगा तो अच्छा कि स्वामी जी ने शिखा डाढ़ी मूछ, घटवा दी—आप दांत तुड़वादें अब कान, नाक शेष रहे सो अपने किसी शिष्य के वास्ते छोड़ दीजिये और स्त्रियों के शिर पर भी बहुत बाल होते हैं उनकी व्यवस्था आफ़्रिकामें रहेगी या अमेरिकामें वा स्वामीजी की चेलियों में ।

प्रश्न ५—आप इसी पृ० प० १४ से कहते हैं कि देखो उपनयन संस्कार में शिखा सहित मुण्डन लिखा है और ऐसा ही मनु २ । ६२ । में १६ वें वर्ष समस्त केशों का उतरवाना पाया जाता है —वाह क्या ही उत्तम प्रमाण है और स्वामी जी आप क्या ही उत्तम आशय को पहुंच गए परन्तु यह भी तो कहिये कि जब आप के समीप यह प्रमाण स्वामी द० सं० जी के लेख पर पुष्टता के योग्य था तो फिर आपने आफ़्रिका तक जाने का क्यों परिश्रम उठाया है ।

प्रश्न ६—आपने पृ० ३३२ पं० १८ से लिखा है कि जब शूद्र के हाथका पानी पीनेमें दोष नहीं है तब उसके हाथकी पूरी जलेबी खाने से क्या बिगड़ गया ? सो कृपानाथ ! जब कि आपके यहां स्वामी जी के लेखानुसार आप नीच से नीच शूद्र को भी पढ़ाकर ब्राह्मण बना सकते हैं तब मेरी समझ में पूरी जलेबी क्या आप को तो शायद उस के हाथका दाल भात तक खाने में भी कोई बिगाड़ न होगा ? और ऐसी अवस्था में पानी का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है फिर एक समय आर्यों के समीप भोजन करते कौन उठ गया था सोचलो ।

प्रश्न ७—स्वामी जी ने दूसरी वारके छपे हुए स० प्र० पृ० २८४ में लिखा है कि जिन्होंने गुड़, चीनी घृत दूध पिसान शाक फल मूल खाया उन्होंने मानो सब जगत् के हाथ का

खाया और उच्छिष्ट खाया और जिस लेख पर द० नं० ति० भा० पृ० ३०४ में पण्डित जी ने समीक्षा भी की है कहिये इस का आपने अपने प्रत्युत्तर द्वारा क्या समाधान किया ? और इसका उत्तर लिखने में आप क्यों चुप होरहे ? खैर अब कृपा कर बतला दीजिये कि जब गुड़ पिसान इत्यादि खाना उच्छिष्ट के बराबर है तो कहिये अब मनुष्य को क्या क्या खाना चाहिये ? और आप क्या खाते हैं या यह कह दीजिये कि यह लेख आर्यावर्त के वास्ते नहीं है किन्तु अमेरिका वालों को है।

मन्त्रप्रकरणम्

स० प्र० में स्वामीजी का लेख है कि मन्त्र नाम विचार का है यदि कोई कहै कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होती है तो वह मन्त्र जपने वालों के हृदय व जिह्वा को भस्म कर देती और इसी को अर्थात् मन्त्र नाम विचार का है भा० प्र० के स्वामीजी ने भा० प्र० में सिद्ध किया है—

प्रश्न १—अब जबकि दो स्वामीजीने मन्त्र नाम विचार का सिद्ध किया है तब अवश्य ही, मन्त्र विचार को ही कहना होगा—और जब गायत्री या वेद मंत्र इत्यादि सब ही को विचार कहना चाहिये और आपके लेखानुसार गायत्रीही क्या किन्तु किसी ने विचार किया कि पाखाने को जाना है बस यहभी एक मन्त्र होगया या किसीने विचार किया कि आज वेश्या प्रसंग करना है, यह भी एक मन्त्र होगया अब क्या है ? मन्त्रों के ढेर लगगये क्योंकि विदून विचार कुछ हो ही नहीं सकता है और जहां विचार किया कि वह मन्त्र होगया कि जिनको लिख २ कर एक क्या सहस्त्रों पुस्तकें बना लीजियेगा।

वाह महाराज ! आपने प्रथम जीवित पितरोंके ढेर कर दिये फिर अगणित देवता बना डाले अब मन्त्रों का हिसाब न रक्खा क्यों न हो पुरुषार्थ भी तो इसी का नाम है और जब ऐसा अन्धेर है तब मेरा मन्त्र प्रकरण विषय में और कुछ प्रश्न करना भी वृथा है—यदि प्रत्यक्ष मन्त्र का फल देखना हो तो यहां देवरी चले आओ मन्त्र से अग्निको शीत-लता दीखेगी और यदि विचार ही मंत्र है तो आप का यह पोथा भी मंत्र है—

कालिदास-प्रकरणम्

स० प्र० में स्वामी जी ने कालिदास जी को बकरी चरा-ने वाला लिखा है और द० नं० ति० भा० में पण्डितजी ने पूछा है कि बतलाइये कौन पुस्तक में कालिदास को गड़रि-या लिखा है—इसपर स्वामी तुलसीराम जी भा० प्र० उत्त-रार्द्ध पृ० २१ में लिखते हैं कि स्वामीजीने तो कालिदास को गड़रिया कहीं नहीं लिखा है आपके हृदय में संस्कार होगा।

प्रश्न १—ठीक है महाराजजी ! गड़रिया नहीं बकरी च-राने वाला लिखा है परन्तु कहिये तो बकरी चरानेवाली मु-ख्य जाति कौन होती है ? और जो स्वामीजी को कालिदा-स के साथ कोई द्वेष नहीं था तो यहां बकरी चराने वाला लिखने की क्या आवश्यकता थी, उनका वर्ण या जाति ही क्यों न लिख दी ? वाह महाराज ! आप को व आप के इस खंडन को वार वार धन्य है—

रुद्राक्ष-प्रकरणम्

पंडित जी महाराज ने रुद्राक्ष धारण करने को शिवभ-क्तों का चिन्ह बतलाया है इस पर भा० प्र० में लिखा है कि यदि ऐसा होता तो केवल शैवों के लिये विधान होता पर-

न्तु उसमें तो रुद्राक्ष हीन पुरुषोंको धिक्कार है—फिर वैष्णवादि को गाली ही हुई।

प्रश्न १—महाराजजी पहिले अपने गुरु बाबा की की हुई १०० नामोंकी व्याख्या देखकर फिर यह बात लिखी होती तो ठीक था—या कुछ हमारेही ग्रन्थोंका द्वेषभाव छोड़ के अवलोकन कर लेते कि हम शिव और विष्णु को कैसा समझते हैं—हमारे यहां निन्दा नहीं है, वाह महाराज आप ने छोड़े तो गुड़ चीनी आदि को और शंका करने बैठे तो रुद्राक्षपर।

स्वामीजी ने स० प्र० में महाभारत की श्लोक संख्या व्यास जी के बनाये हुए चार सहस्र चारसौ बतलाई है और लिखा है कि संजीवनी नामक इतिहास में यह बात लखुना के राव सा० व उनके गुमाश्ता रामदयाल चौबेने अपनी आंखों से देखी हैं—वह महाराज विक्रम के समय २०००० होगया इत्यादि और इसपर पण्डितजी महाराजने कई प्रमाणों से इसका खण्डन करके महाभारत को एक लक्ष श्लोक का ग्रन्थ सिद्ध किया है जिसका स्वामी तुलसीराम जी बहुत सी बातों को छिपाकर केवल इतना ही उत्तर देते हैं कि क्या आपने लखुना के राव सा० व रामदयाल का कोई पत्र पाया है महाभारतमें स्वयं आदि पर्वमें २४००० सहस्र श्लोक होना लिखा है शेष पीछे मिलाये गये —

प्रश्न १—कहिये महाराज जी! अब आप ही के लेखसे (जब कि आप स्वयं महाभारत को २४००० श्लोक का ग्रन्थ कहते हैं) स्वामीजी का लेख व राव सा० व रामदयाल जी का कहना जिन्होंने संजीवनी इतिहास आंख से देखा था यह सब असत्य हुए या नहीं और ऐसे असत्य कहनेवालों

को यदि पण्डित जी ने कुछ कहा या लिखा तो क्या बुरा किया ?

प्रश्न २—प्रथम स्वामीजीने भी स्वयं महाभारतमें २४००० श्लोक कहे थे और अब ४४०० कहते हैं कहिये अब इस में स्वामीजी को कितना सत्यवक्ता कह सकते हैं ? और अब स्वामी जी के लेखों पर कैसा विश्वास होना चाहिये—

प्रश्न ३—आप के लेखानुसार महाभारत के २४००० श्लोक व्यास जी के बनाये हुए व शेष ७६००० पश्चात् के मिले हुए सिद्ध होते हैं परन्तु यह न मालूम हुआ कि वे ७६००० श्लोक मिलाये हुए कौन २ से कौन कौन पर्व में कितने कितने हैं— और इन २४००० श्लोकों में सम्पूर्ण युद्ध इत्यादि की कथायें आगई हैं या नहीं ? इनमें भी कोई कथा बनावटी व मिलावटी है—महाभारत के आदि पर्व में ही लिखा है कि वैशंपायन का सुनाया महाभारत एक लक्ष है, तब आपकी मानें या उस ग्रन्थ की ।

प्रश्न ४—आपने अपने भा० प्र० पृ० २६ उ० से बड़े बल पूर्वक नरसिंहावतार व महादेवजी के शरभावतार की कथा पुराणों की असत्यता सिद्ध करने को लिखी है । सो बहुतही यथार्थ है इसमें सन्देह ही क्या है कि जिसको जैसी बुद्धि रहती है वैसा ही वह सबको समझता है परन्तु स्वामी जी महाराज जरा अपने सौ नामों की व्याख्या को ही तो फिर देखिये कि कौन विष्णु व कौन महादेवजी हैं । और जब कि वह एक हैं, और जिनके सगुण चरित्रमें शारद नारद इत्यादि भी मोहित होगए हैं जैसा कि मैं पहिले कह चुकाहूं तब आपको ऐसा भ्रम होना क्या बड़े आश्चर्य की बात है शरभावतार का अर्थ नरसिंह का अन्तर्द्धान होना है ।

नाम माहात्म्य प्रकरणम्

अत्यानन्द की बात है कि स्वामी तुलसीराम जी ने स० प्र० के विरुद्ध व पंडितजी के लेखानुसार परमात्मा के नाम स्मरण को पुण्य जनक व पापसे बचाने वाला लिखा है और यद्यपि स्वामी तुलसीराम जी अब भी स्वामीजी के लेख को सत्य करके यह नाम माहात्म्य स्वीकार करतेहैं परन्तु जबकि हमारे जगद्विख्यात पंडितजी के सत्य लेख व नाम माहात्म्य को वह किसी प्रकार से भी स्वीकार कर चुके हैं, तब सत्य बात पर किसी तरह की हमको शङ्का करना मानों दोष का भागी होना है—

मूर्तिपूजा प्रकरणम्

पूरा २ स० प्र० व द०नं०ति० भा० व भा० प्र०—का लेख लिखने से तो फिर भी पुस्तक बढ़जाने की सम्भावना है इस कारण अपने ही प्रश्न लिखता हूं।

प्रश्न १—स० प्र० में स्वामी जी ने इस वाक्य पर जोर दिया है कि (न तस्य प्रतिमा अस्ति) अर्थात् उसकी प्रतिमा नहीं है और आप भा०प्र० उत्तरार्द्ध पृष्ठ ३४ में प्रतिमा शब्द का अर्थ (नपैना) करते हैं कहिये इन दो में सत्य क्या है

प्रश्न २—यह बतलाइये कि वेद आदि वाक्य ईश्वर के हैं या नहीं? और यदि हैं तो अब जब कि वेद यह कहता है कि उसकी प्रतिमा अर्थात् मूर्ति नहीं है तो इससे यह सिद्ध होता है या नहीं? कि (ईश्वर की न सही और किसी की हो) मूर्ति यह शब्द पहिले का है। अच्छा अब है तो बतलाइये कि किस की मूर्ति का है जिस परसे वेद यह कहता है कि उस परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है प्रतिमाका अर्थ

सदृश का है यह मूर्ति का नहीं है, देखो वेद भा० भूमिका।

प्रश्न ३—आपने भा० प्र० पृ० ६७ में इस बात को मानकर कि रावण लिंग पूजता था लिखा है कि जो रावण राक्षस के अनुगामी हों वह लिंगपूजा करें जैसे अन्य अनेक अनर्थ किये थे वैसे एक लिङ्गपूजा भी सही अब बतलाइये कि वह केवल राक्षस ही नहीं किन्तु राक्षसों का राक्षस था और एक अनर्थ नहीं, महा अनर्थी सही परन्तु यह तो अब आप के ही लेखानुसार सिद्ध हुआ या नहीं कि लिङ्ग (मूर्ति) पूजा प्राचीन है और अब तो यह बात न कहियेगा कि मूर्ति पूजा जैनियोंसे चली है महाराज जी जो (न तस्य प्रतिमा अस्ति) का अर्थ स्वामी जी ने किया है यह कदापि ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि देखिये इसी का गुसाईं जी ने रामायण में भाषानुवाद यह किया है कि–निरूपमन उपमा आन राम समान राम, निगम कहैं–अब बतलाइये कि गुसाईंजीके इस वाक्य को ३०० वर्षसे अधिक होचुके हैं फिर क्या वह जानते थे कि आगे एक दयानन्द जी होकर ऐसा अर्थ करेंगे सो हम आजही उनके अर्थ खंडन को यह लिख देवें—

प्रश्न ४—अब यदि हम आपके स्वामी जी के लेखानुसार यह भी मान लेवें कि उस परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है तो भी हम यह कह सकते हैं कि निस्संदेह जब तक उसका निराकार स्वरूप हमको मालूमही नहीं है तब तक उसकी प्रतिमा कैसे हो सकती है—और जब उस का साकार स्वरूप हमारी दृष्टि में आया तब फिर क्यों उसकी प्रतिमा न होगी अब इस पर यदि आप कहैं कि वह निराकार है, साकार होही नहीं सकता तो मैं फिर पूछता हूं कि कहिये वह कुछ भी है या नहीं ? यदि नहीं है तो फिर जब कि वह कुछ भी नहीं है तो आप परमेश्वर किस को कहते हैं ? और यदि

कुछ है तो बस यह कुछ होना ही उसका (यद्यपि वह हमारी दृष्टिमें नहीं आता) उसकी साकारता को सिद्ध करता है अब इस पर कदाचित् फिर आप प्रश्न करें कि यदि वह कुछ है (जिसको तुम साकार कहते हो) तो उसका नाम निराकार क्यों लिखा है उस का आकार क्यों नहीं बतलाया ? तो बस अब इसके उत्तरमें मैं केवल आप से इतना ही पूछता हूं कि बतलाइये मैं कैसे आकार का हूं और मेरे हाथ पांव इत्यादि कैसे हैं ? और इस समय मैं कहां बैठा हूं व मेरे पास कौन २ बैठे हैं ? इसका आप यही उत्तर देंगे कि जब तक तुझे हमने नहीं देखा हम कोई तेरा आकार नहीं बतला सक्के और न यह कह सकते हैं कि तेरे हाथ पांव इत्यादि कैसे हैं ? व तू कहां बैठा है ? व तेरे साथ कौन २ बैठे हैं ? तो अब सोच लीजिये कि जब आप को इस बातका विश्वास होने पर भी कि यह कोई मनुष्य हमसे प्रश्न कर रहा है—आप मेरा आकार इत्यादि नहीं बतला सकते हैं ? तो फिर उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के आदि स्वरूप को कि जिस को किसी ने भी नहीं देख पाया है कैसे कोई उस का आकार बता सकता है ? अब इस पर यदि फिर भी आप कहैं कि क्यों नहीं देख पाया है ? जो उस में लीन हो जाते हैं बराबर देखते हैं तो मैं इस का केवल इतना ही उत्तर देता हूं कि जो सच्चे दिल से उसमें लीन होजाते हैं ? वह फिर भी आपकी मेरी तरह बक २ करने को इस संसार में भी नहीं आते हैं ।

प्रश्न ५—पंडित जी ने लिखा है कि मूर्ति के देखने से ईश्वर का स्मरण होता है इस पर आप उत्तर देते हैं कि नहीं मूर्ति देखने से बढ़ई का स्मरण होता है—अब मैं पूछ-

ता हूं कि स्वामी जी महाराज की मूर्ति देखने से तो आप को निस्सन्देह बढ़ई का स्मरण होता ही होगा परन्तु यह भी तो कहिये कि स्वामी जी की तसवीर देखने से आप को किस कारीगर का स्मरण होता है या आपको अपने बाप दादों का फोटो (यदि हो तो) देखने से किस फोटो लेने वाले का ध्यान आता होगा ?

प्रश्न ६—स्वामी जी महाराज कहते हैं कि परमेश्वर का वृथा नाम क्यों लेते हो यह क्यों नहीं कहते कि हम पत्थर की पूजा करते हैं परन्तु देखिये—एक बड़ी मोटी बात है—और दुनियां देखती है कि यदि किसी जगह दस मन्दिर अलग २ देवताओंके हैं और आप वहां किसीसे पूछें कि यह किसके मन्दिर हैं ? तो वह बतलाने वाला अवश्य ही आप को पृथक् २ देवताओंके नाम बतला कर यही कहेगा कि यह रामचन्द्र जी का है या यह राधाकृष्ण जी का है—या यह अमुक देवताओं के हैं तो अब बतलाइये कि यदि हम उन को पत्थर मान के पूजते तो फिर इतने नाम बतलानेकी वहां क्या आवश्यकता थी, और इस पर भी यदि यह कहा जावे कि तुम पत्थर को पूजते हो कहिये कि उस कहने वाले को कितना बड़ा बुद्धिमान् कहना चाहिये जिसे सम दृष्टि होकर भी देवता पत्थर दीखता है।

भा० प्र०—उत्तरार्द्ध पृ० ४२ में स्वामीजी महाराजने जो द० न० ति० भा० के खंडनमें प्रश्न किये हैं उनके प्रश्न व उन का उत्तर नीचे लिखता हूं।

प्रश्न १—मूर्ति के देखने से बढ़ई का स्मरण होता है।

उत्तर—इसका उत्तर ऊपर पढ़के तसल्ली कर लीजिये—

प्रश्न २—पृथ्वी इत्यादि के देखने से ईश्वर का स्मरण होसकता है—

उत्तर–यह केवल आलसियों के वास्ते है नहीं तो जैसा मूर्ति के दर्शन समय में ईश्वरका स्मरण होता है वैसा और किसी समय नहीं हो सकता—

प्रश्न ३—पत्थर में परमेश्वर का विशेष क्या चिन्ह है

उत्तर–हमारा विश्वास व प्रेम है और वह उसमें व्यापक है तथा उसमें सगुण आकार है यही विशेष है और तुम से कुशाग्र बुद्धियों के वास्ते निस्सन्देह वह पत्थर ही है—

प्रश्न ४–मूर्ति के दर्शन पाप से बचावें तो अदर्शन समय में निर्भयता हो—

उत्तर–हमारे यहां ऐसा कभी नहीं हो सकता यह बात केवल उन्हीं लोगों पर घटित होसक्ती है कि जो परमेश्वर को सर्वव्यापी मानकर भी यथा योग्य उस का आदर नहीं करते–

प्रश्न ५–भावना सर्वत्र करते हो तो पुष्पादि तोड़ कर मूर्ति पर क्यों चढ़ाते हो—

उत्तर–हम सर्वत्र भावना ऐसी मानते हैं कि–जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं—और मूर्ति में हमारी मुख्य भावना है इसी से पुष्प आदि अपने प्रेम वश परमेश्वर की मूर्ति पर चढ़ाते हैं तुम रोटी में व्यापक मानकर हाथ से चबाते हो या नहीं सच कहना—

प्रश्न ६—महारानी एक देशीय है और ईश्वर सर्वव्यापी है—

उत्तर–जब कि ईश्वर सर्वव्यापी समझा जाता है तो अब भी क्या वह मूर्ति से बाहर रहा-–

प्रश्न ७–पुष्प चढ़ाना अनादर हुआ, क्योंकि वृक्षस्थ परमेश्वर से छीन कर मूर्ति पर चढ़ाये गये–

उत्तर—यह प्रश्न तो उस वक्त होसकता था कि जब हम

आप कैसा सर्वव्यापी मानें।

प्रश्न ८-सर्वांग अचल होने से वह रोटी दाल के साथ चलायमान नहीं होसक्ता-

उत्तर—तो अब वह सर्वव्यापी नहीं रह सक्ता क्योंकि आप के लेखानुसार कौर तोड़ते ही उसने खा जाने की दहशत से रोटी का साथ छोड़ दिया –

प्रश्न ९—यदि समानों में ही एक दूसरे की भावना होसकती है ? विषमों में नहो तो परमेश्वर के समान कोई नहीं फिर मूर्ति में उसकी भावना कैसे होसक्ती है–

उत्तर–वह मूर्ति भी उसी परमेश्वर की है व उसीके नाम पर स्थापित की गई है–

बस अब विशेष लिखना वृथा है बुद्धिमान् लोग इतने ही पर से समझ लेंगे, कि हमारे स्वामी जी महाराज के द० न० ति० भा० के खण्डन में यह कैसे २ उत्तम प्रश्न हैं ।

तीर्थ प्रकरणम्

भा० प्र० उत्त०–पृ० ६७ पं० १२ सारांश यह है कि गंगादि को तीर्थ नहीं कहते और न वह पाप नाशक है–

प्रश्न १—कहिये तो कि फिर आपके स्वामी द०न०जी क्यों गंगा किनारे दिगम्बर घूमा करते थे ? क्या और कोई नदी नहीं थी (देखो भा० प्र० पृ० २)

प्रश्न २–आपके स्वामी जी ने पहिले स० प्र० पृ० २७४ पं० २५ में (जब कि गंगा में पाप नाश नहीं हो सक्ता है) यह क्यों लिखा है ? कि जो तू सत्य बोलेगा, तो गंगा या कुरुक्षेत्र में प्रायश्चित्त को न जाना पड़ेगा ।

बस यह कह दीजिये कि यह छापे की गलती है–

गुरु प्रकरणम्

स० प्र० में लिखा है कि यदि गुरु भी दोषी हो तो दण्डनीय है और पंडितजी ने गुरू को अदंड्य और गुरु की आज्ञा मानना लिखा है इसपर भा० प्र०का यह लेख है मनु० २। २०० व २०१ में गुरु निन्दा न सुनने का विधान झूठी निन्दा न सुनने के लिये है—और यदि यथार्थ में गुरु दोषी हो तो (गुरुंवा बालवृद्धौवा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ मनु०) चाहै गुरु हो चाहै बालक हो चाहै बूढ़ा या बहुश्रुत ब्राह्मण हो किन्तु दुष्ट आतयायी को शीघ्र मारे।

प्रश्न १—प्रथम यह कहिये कि यह श्लोक बे पता क्यों लिखा गया।

प्रश्न २—ऊपर के दो श्लोकों में (झूठी निन्दा का विधान) किन २ अक्षरों का अर्थ है

प्रश्न ३—जब मनुजी २। २०० में यह कहते हैं कि यदि कहीं गुरु के यथार्थ दोष भी कहेजाते हों, तो शिष्यको चाहिये कि वहां से अपने कान पर हाथ धरके चला जावे तो अब कहिये कि गुरु को मार डालना कब अदोष होसकता है और मनुजी कब ऐसी आज्ञा दे सक्ते हैं और यदि कदाचित् ऐसी ही आज्ञा हो तो क्या आप उसको क्षेपक करके नहीं निकाल सक्ते हैं ? परन्तु हां यह गुरुहत्या पुष्ट करने का श्लोक है यह आपके समीप कैसे क्षेपक हो सकता है परीवादात्खरो भवति श्वावै भवति निन्दकः। मनु० झूठी निन्दा से गधा और सत्य निन्दा से कुत्ता होता है।

प्रश्न ४—यह भी तो कहिये कि आपके यहां गुरु करके पूर्व भी उसकी कुछ जांच परताल होती है या नहीं ? या चा-

है जिसे गुरू कर लिया और पीछे उसमें कोई दोष निकला तो उस को मार कर हत्यारे वन गये।

पुराण प्रकरणम्

भा० प्र० पृ० ७३ से पृ० ८८ तक पुराण प्रकरण चला है- जिसमें द० नं० ति० भा० का जैसा खंडन मंडन है वह देखने व पढ़नेसे ही विदित हो सकता है और सार यह है कि द० न० ति० भा० की कई वातें व स्वामी जी महाराज के कई लेख जवानी सुनकर लिख देने को स्वीकार करके भी स्वामी तुलसीराम जी ने पुराणों के असत्य कहने में कोताही नहीं की है सो मेरी समझ में वहुत ही सत्य है क्योंकि यह एक प्रचलित कहावत है (कि जिसने अपने वाप को वाप नहीं कहा है वह पड़ोसी को चचा कब कहैगा जब कि स्वामीजी महाराज अपने माननीय ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण व महाभारत में ही दोष लगाने व उनके लेखों को मिलावटके नाम से असत्य कहने को नहीं चूकते हैं तव भागवत इत्यादि को असत्य वतलाना उनके लिये कोई आश्चर्य की वात नहीं है परन्तु फिर भी विचारने से सत्य सत्य ही रहता है, व असत्य असत्य ही है देखिये स्वामी जी महाराजने पहिले स० प्र० में आर्यों का तिव्वत से यहां आना लिखा फिर अन्तमें लिखा कि इस भूमिका नाम आर्यावर्त इससे है कि आदि सृष्टि से आर्य लोग इस पर रहते हैं और फिर आप इतने बड़े असत्य लेख को भी इस प्रकार से भा० प्र० पृ० ९२ में सत्य सिद्ध करते हैं कि (सृष्टि ही तिव्वत में हुई तव वहींसे यहां आए लिखना और सदा से यहां आर्य लोग रहे इसका तात्पर्य यह है कि यह भूमि आदि सृष्टि से कभी दस्युओं से आच्छादित नहीं रही, आर्यों का राज्य रहता रहा इसीसे

इस का नाम आर्यावर्त था) अब बतलाइये कि क्या आपके इस तात्पर्य से भी स्वामी जी का लेख सत्य हो सकता है ? कहिये स्वामी जी के लेखानुसार आदि सृष्टि से आर्यों के यहां रहने से इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ और आप के लेखानुसार तिब्बत से यहां आये इसमें कुछ अन्तर है ? या नहीं और अब इसका नाम आदि सृष्टि से आर्यावर्त समझा जावे ? या आर्यों के तिब्बत से आये के पश्चात् समझा जावे–और फिर आपही कहते हैं कि आदि सृष्टि से यह भूमि दस्युओं से आच्छादित नहीं रही आर्यों का राज्य रहता रहा इसी से इसका नाम आर्यावर्त था अब कहिये इस आपही के लेख से आपका तिब्बतसे आर्यों का आना कहां बह गया ? सिवाय इसके आप कहते हैं कि इस का नाम आर्यावर्त था तो जानो उस समय इसका नाम आर्यावर्त था अब नहीं है और इतने पर भी आप अपनी हठ को न छोड़कर स्वामी जी के लेख को सत्य ही कहते जावें व जबरदस्ती सत्य ही सिद्ध करते जावें; तो खुशी आपकी है मुझे तो आपकी इस हठ पर वह किस्सा याद आता है कि एक जगह से दो मनुष्य कहीं पढ़ने को गये थे उनमें से एकने तो पूर्ण असत्य बोलना सीखा और दूसरे ने यह सीखा कि कोई कैसा भी असत्य कहै उसको सत्य सिद्ध कर देना दैवयोगसे किसी समय दोनोंकी भेट होगई और कुशल प्रश्नके पश्चात् दोनों ने एक दूसरे से अपनी २ विद्या पढ़ने का हाल जाहिर किया और रहने लगे कुछ दिन पश्चात उस असत्य बोलने वाले ने विचार किया, कि इस दूसरे की परीक्षा तो करना ही चाहिये, कि यह असत्य को कैसे सत्य सिद्ध करता है बस ऐसा सोचकर वह बोला भाई आज इतने बड़े आश्चर्य की बात देखी है कि घास काटते में मनुष्य की नाक कट

गई । तब वह बोला सत्य तो है एक मनुष्य नदी के भीतर खड़े होकर उस के ऊपरी किनारे की घास काट रहा था, और उस नदी के किनारे ऊंचे थे कि यकायक वहांसे हंसिया रिपटा और उसकी नाक काटता हुआ नीचे आगया: जब वह फिर बोला कि भाई हमने आज एक मनुष्य को ऊंटपर चढ़े हुए कुत्ता काटते देखा है दूसरा बोला यह भी तो सत्य है वह मनुष्य कुत्ते को अपने पास ऊंट पर विठाकर उसका प्यार कर रहा था कि यकायक किसी कारण से कुत्ते की तबियत बिगड़ी और उसी को काट खाया सो अब जब कि ऐसी २ असत्य व असम्भव बातों को भी कोई सत्य कर के दिखलाने लगे, तब सिवाय खामोशीके और उसके साथ क्या कहा जा सकता है और इसी कारण अब मैं अपनी लेखनी को बन्द करके नम्रता पूर्वक विनय करता हूं कि यदि ऊपर के लेख व प्रश्नों में मुझ से कुछ भूल होगई हो तो कृपाकर उसे क्षमा कीजियेगा और मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर समाधान करना या न करना आपकी मरजी पर है मैं यह भी नहीं कहता कि जो बात मेरी समझ में असत्य है वह सभी विद्वानों के समीप भी असत्य ही होगी नहीं यदि विद्वानों के समीप मेरी समझ असत्य व आप का लेख सत्य समझा जावे तो उस पर भी मेरी कोई खास हठ नहीं है । (इति)

कुंडलिया

सिद्ध भूत ग्रह चन्द्र शुभ, सम्वत लेहु विचार।
मधू मास सित पक्ष तिथि, नौमी दिन गुरुवार
नौमी दिन गुरुवार सरस सुखमा सन भीनों ।
शम्भु कृपा ते ग्रन्थ विघन बिन पूरन कीन्हों ॥
जो जो याकों सुजन जन, करि हैं जग पर सिद्ध ।
तिन पै कृपा राखि हैं नवो निद्ध वसु सिद्ध ।

शुभम्

मिलने का पता:—

मैनेजर

ब्रह्मप्रेस इटावा